साहित्य

श्रीधर पाठक

रघुवंश

भारतीय
साहित्य के
निर्माता



श्रीधर पाठक

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा है मुंशी जो व्याख्या का दस्तावेज लिख रहा है। भारत में लेखन-कला का यह संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०

सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

श्रीधर पाठक

रघुवंश



साहित्य अकादेमी

Sreedhar Pathak : A monograph in Hindi by Raghuvansh on the Hindi author. Sahitya Akademi, New Delhi (1991)

प्रथम संस्करण : 1985
पुनः मुद्रण : 1991

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय
रवीन्द्र भवन, 35, फीरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली-110001

विक्रय विभाग
स्वाति', मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली- 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय
जीवन तारा भवन, 23 A/44X, डायमन्ड हारबार रोड,
कलकत्ता 700 053
29, एलडाम्स रोड़ तेनामपेट, मद्रास-600018
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई-400014
ए.डी.ए. रंगामदिंरा, 109 जे० सी० रोड़, बैंगलौर-560002

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

मुद्रक :
युनिक कलर कार्टन, A-28/2 मायापुरी फेस-I नई दिल्ली-110064.

परिशिष्ट—क

पं. श्रीधर पाठक द्वारा रचित पुस्तकें

(अ) काव्य-साहित्य :

१. मनोविनोद
२. बाल भूगोल
३. एकान्तवासी योगी
४. जगत् सचाई सार
५. ऊजड़ ग्राम
६. श्रान्त पथिक
७. कश्मीर सुषमा
८. आराध्य शोकांजलि
९. जार्ज वन्दना
१०. भक्ति विभा
११. श्री गोखले प्रशस्तिः
१२. श्री गोखले गुणाष्टक
१३. देहरादून
१४. श्री गोपिका गीत
१५. भारत गीत

(आ) गद्य-साहित्य :

१. तिलस्माती मुंदरी
२. निबन्ध और लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित ।

परिशिष्ट—ख

संदर्भ-ग्रन्थ

१. आधुनिक साहित्य : श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
२. कविता कौमुदी, भाग-२ : (सं.) श्री रामनरेश त्रिपाठी
३. द्विवेदी अभिनन्दन ग्रंथ : नागरी प्रचारिणी सभा
४. प्रेमघन सर्वस्व, भाग-१ : हिन्दी साहित्य सम्मेलन
५. बालमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रंथ : (सं.) श्री झाबरमल्ल शर्मा एवं श्री बनारसी दास चतुर्वेदी
६. भारतेन्दु ग्रंथावली, भाग-2 : नागरी प्रचारिणी सभा
७. रोमैण्टिक साहित्य शास्त्र : देवराज उपाध्याय
८. संस्मरण : बनारसी चतुर्वेदी
९. स्वजीवनी : श्रीधर पाठक
१०. हिन्दी कोविद रत्नमाला (भाग-१): बाबू श्यामसुन्दर दास
११. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल
१२. हिन्दी साहित्य : बाबू श्यामसुन्दर दास

पत्रिकाएँ :

१. हिन्दोस्थान
२. भारत मित्र
३. हिन्दी प्रदीप
४. सरस्वती
५. नागरी प्रचारिणी सभा
६. अभ्युदय
७. विद्यार्थी

अनुक्रम

भूमिका

ऐसा अनेक वार होता है कि साहित्य के रचनाकारों में कतिपय विशेष ध्यान आर्कषित करते हैं, चाहे साहित्य के इतिहास में अथवा साहित्य के मूल्यांकन में उनका उतना ऊँचा स्थान न रखा गया हो। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल पर विचार करते हुए साहित्य के इतिहासकार भारतेन्दु युग को जागरण युग और द्विवेदी युग को पुनरुत्थान युग मानते हैं। इसी क्रम में भारतेन्दु युग की कविता के अधिकांश को भक्ति और रीति काव्य के नये संस्करण के रूप में मानकर नयी भावभूमि की कविता को उद्‌बोधन की कविता स्वीकार करते हैं। और द्विवेदी युग की कविता को इतिवृत्तात्मक और राष्ट्रीय आदर्शों को अभिव्यक्त करनेवाली स्वीकार किया जाता है। परन्तु मेरा ध्यान भारतेन्दु युग के श्रीधर पाठक और जगमोहन सिंह तथा द्विवेदी युग के रामनरेश त्रिपाठी, रूप नारायण पाण्डेय और मुकुटधर पाण्डेय जैसे कवियों की ओर बरबस आर्कषित हो जाता है। विशेषकर इनमें श्रीधर पाठक का महत्त्व इस कारण भी लगता है कि उन्होंने इन दोनों आधुनिक युगों में अपने रचनाकर्म से समसामयिक कवियों को प्रेरणा दी है और कविता की नयी दिशा का अन्वेषण किया।

भारतीय काव्य में रचनाकार की व्यक्तिपरक अभिव्यक्ति को सीमित अवसर मिला है। निश्चय ही वैदिक साहित्य में ऐसी अनेक ऋचाएँ हैं, जिनमें द्रष्टा कवि चतुर्दिक् की प्रकृति के अदृश्य रहस्य का वैयक्तिक स्तर पर अनुभव करता है और उसके आधार पर रचना करता है। इसी प्रकार पालि की बौद्ध थेर और थेरी गाथाओं में भिक्षु और भिक्षुणियाँ अपने निजी अनुभव को अभिव्यक्त करती हैं। परन्तु लौकिक संस्कृत के विपुल रचनात्मक साहित्य में वैयक्तिक और स्वच्छन्द अनुभवों की सरल और सीधी अभिव्यक्ति प्रायः नहीं मिलती। यह भिन्न बात है कि 'मेघदूत' जैसे दूत काव्यों और 'गीत गोविन्द' जैसे गेय काव्य में इस स्वच्छन्द वैयक्तिक भावना की अभिव्यक्ति अन्तर्निहित हो। इसी प्रकार हिन्दी साहित्य के अंतर्गत भक्ति काव्य अधिकांशतः गेय काव्य है, जिसकी रचना पद शैली में की गयी है। परन्तु इस काव्य में भी मीरा के पदों को अपवाद ही माना जा सकता है, जिनमें मीरा ने निजी प्रेम की व्यंजना की है। अधिकांश अन्य कवियों ने राधा अथवा

0 8
8 0

भूमिका

ऐसा अनेक बार होता है कि साहित्य के रचनाकारों में कतिपय विशेष ध्यान आर्कषित करते हैं, चाहे साहित्य के इतिहास में अथवा साहित्य के मूल्यांकन में उनका उतना ऊँचा स्थान न रखा गया हो। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल पर विचार करते हुए साहित्य के इतिहासकार भारतेन्दु युग को जागरण युग और द्विवेदी युग को पुनरुत्थान युग मानते हैं। इसी क्रम में भारतेन्दु युग की कविता के अधिकांश को भक्ति और रीति काव्य के नये संस्करण के रूप में मानकर नयी भावभूमि की कविता को उद्‌बोधन की कविता स्वीकार करते हैं। और द्विवेदी युग की कविता को इतिवृत्तात्मक और राष्ट्रीय आदर्शों को अभिव्यक्त करनेवाली स्वीकार किया जाता है। परन्तु मेरा ध्यान भारतेन्दु युग के श्रीधर पाठक और जगमोहन सिंह तथा द्विवेदी युग के रामनरेश त्रिपाठी, रूप नारायण पाण्डेय और मुकुटधर पाण्डेय जैसे कवियों की ओर बरबस आर्कषित हो जाता है। विशेषकर इनमें श्रीधर पाठक का महत्त्व इस कारण भी लगता है कि उन्होंने इन दोनों आधुनिक युगों में अपने रचनाकर्म से समसामयिक कवियों को प्रेरणा दी है और कविता की नयी दिशा का अन्वेषण किया।

भारतीय काव्य में रचनाकार की व्यक्तिपरक अभिव्यक्ति को सीमित अवसर मिला है। निश्चय ही वैदिक साहित्य में ऐसी अनेक ऋचाएँ हैं, जिनमें द्रष्टा कवि चतुर्दिक् की प्रकृति के अदृश्य रहस्य का वैयक्तिक स्तर पर अनुभव करता है और उसके आधार पर रचना करता है। इसी प्रकार पालि की बौद्ध थेर और थेरी गाथाओं में भिक्षु और भिक्षुणियाँ अपने निजी अनुभव को अभिव्यक्त करती हैं। परन्तु लौकिक संस्कृत के विपुल रचनात्मक साहित्य में वैयक्तिक और स्वच्छन्द अनुभवों की सरल और सीधी अभिव्यक्ति प्रायः नहीं मिलती। यह भिन्न बात है कि 'मेघदूत' जैसे दूत काव्यों और 'गीत गोविन्द' जैसे गेय काव्य में इस स्वच्छन्द वैयक्तिक भावना की अभिव्यक्ति अन्तर्निहित हो। इसी प्रकार हिन्दी साहित्य के अंतर्गत भक्ति काव्य अधिकांशतः गेय काव्य है, जिसकी रचना पद शैली में की गयी है। परन्तु इस काव्य में भी मीरा के पदों को अपवाद ही माना जा सकता है, जिनमें मीरा ने निजी प्रेम की व्यंजना की है। अधिकांश अन्य कवियों ने राधा अथवा

गोपी जैसे पात्रों के माध्यम से प्रेम की अभिव्यक्ति की है। विनय संबंधी पदों में कवि अपने निजी भावों को अवश्य अभिव्यक्त करते रहे हैं, परन्तु इस प्रकार के निजी भावों की अभिव्यक्ति सीमित रूप में रोमैण्टिक भावाभिव्यक्ति मानी जा सकती है।

श्रीधर पाठक ने एक प्रकार से सर्वप्रथम हिन्दी काव्य में रोमैण्टिक भावाभिव्यक्ति अपने प्रगीति काव्य में की है। निश्चय ही उन्होंने अंग्रेज़ी रोमैण्टिक काव्य का अध्ययन किया है, पर युग-परिवेश ने भी उनकी इस स्वच्छन्द मानसिकता का निर्माण किया है। संस्कारवादी और धार्मिक रूढ़ियों पर चलने वाले परिवार में जन्म लेने और उसी वातावरण में बड़े होने के बावजूद उनमें रूढ़ियों तथा कुरीतियों के प्रति विद्रोह भाव रहा है। उनकी भावना उनकी रचनाओं में अभिव्यक्त हुई है। साथ ही उनके राष्ट्र-प्रेम, जाति-प्रेम और संस्कृति-प्रेम ने उन्हें नये समाज की रचना की दृष्टि दी है। इसी कारण उनके काव्य में एक ओर प्रेम और सौन्दर्य की भावाभिव्यक्ति है, तो दूसरी ओर अपने देश और समाज की पराधीनता से मुक्त होने की कामना है। यह भी महत्त्व की बात है कि पाठक जी ने अपने अनूदित खण्ड काव्यों, निरंतर लिखे जाने वाले प्रगीतों और अन्य काव्य रूपों के माध्यम से दोनों आधुनिक युगों में काव्य की स्वच्छन्द भावाभिव्यक्ति का क्रम अग्रसर किया है और दूसरे रचनाकारों को प्रेरणा दी है।

इस पुस्तिका के लिखने में मुझे सर्वाधिक सहायता डॉ. रामचन्द्र मिश्र की पुस्तक **'श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य'** से मिली है। मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि मेरे समान उन्होंने भी स्वच्छन्दतावादी काव्य के मुख्य सन्दर्भ में श्रीधर पाठक पर विचार किया है। इस पुस्तक के अतिरिक्त हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों का उपयोग भी किया गया है। पाठक जी के काव्य की मूल प्रवृत्ति को समझने के लिए उनकी सारी रचनाओं को पढ़ने का मेरा मन रहा है, परन्तु इस सीमित समय में वे सभी मुझे सुलभ नहीं हो सकीं। पर जो भी मैंने पढ़ा उस पर फिर से विचार करने का प्रयत्न किया है और उनकी मूल काव्य-दृष्टि को समझने की चेष्टा की है। मैं डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र और डॉ. हेमन्त कुमार श्रीवास्तव के प्रति भी अपना आभार प्रकट करना चाहता हूँ, क्योंकि मुझे इनसे अपेक्षित सहायता मिली है।

रघुवंश

3/2, बैंक रोड
इलाहाबाद
29-3-1985

१

युग-परिवेश

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का प्रारंभ भारतेन्दु युग से माना गया है और यह युग उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे चरण में पड़ता है। श्रीधर पाठक के जीवन का पूर्वार्द्ध इस युग में बीता है। इसी प्रकार पाठक जी के जीवन का उत्तरार्द्ध द्विवेदी युग तथा छायावादी युग के प्रारंभिक वर्षों में पड़ता है। मुख्यतः पाठक जी का रचनाकाल भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग में माना जा सकता है। भारतीय नवजागरण की दृष्टि से हिन्दी साहित्य के इन दोनों युगों का महत्त्व है। इन दोनों युगों में देश में राष्ट्रीय चेतना का उत्तरोत्तर विकास हुआ है। अंग्रेज़ों के माध्यम से हमारा सम्पर्क योरप से हुआ है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से हमारे देश में अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार-प्रसार हुआ। यद्यपि अंग्रेज़ी शासक इस शिक्षा का प्रचार अपने व्यापार और शासन व्यवस्था की दृष्टि से कर रहे थे, परन्तु इस शिक्षा से एक प्रबुद्ध वर्ग भी सम्मुख आ रहा था। इस प्रकार देश में एक नई चेतना सांस्कृतिक जागरण के रूप में विस्तार पा रही थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से प्रारंभ होनेवाला यह जागरण आगे अधिक विस्तार पाता गया है। उस समय राजा राममोहन राय ने देश का ध्यान सामाजिक परिस्थिति की ओर आकर्षित किया। उन्होंने समाज की अनेक बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न किया। आगे चलकर स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने प्रयत्नों से देशवासियों में अपनी प्राचीन संस्कृति के प्रति अनुराग उत्पन्न किया। उन्होंने भारतीय संस्कृति का स्वस्थ और गतिशील रूप जनसमाज के सामने रखा, साथ ही भारतीयों में स्वतंत्रता की भावना और देशप्रेम जाग्रत किया। केशवचन्द्र सेन जैसे महानुभावों ने इसी प्रकार देश में सांस्कृतिक उन्नयन का कार्य इसी काल में किया। थियोसोफ़िकल सोसायटी ने भारत के गौरवपूर्ण अतीत का स्मरण देशवासियों को दिलाया। एनी वेसेण्ट ने उसके कार्य को अधिक बल दिया और ब्रह्म ज्ञान के साथ राष्ट्रीयता का प्रचार किया। स्वामी रामकृष्ण परमहंस और उनके

शिष्य विवेकानन्द ने भारतीय संस्कृति के गौरव को उसकी आध्यात्मिक भूमिका के साथ देशवासियों के सामने रखा। स्वामी विवेकानन्द ने अपने व्यक्तित्व की गरिमा और भाषण की क्षमता से भारतीय संस्कृति के गौरव को पश्चिमी समाज के सामने प्रतिपादित किया।

इस युग में पश्चिमी शिक्षा और साहित्य के सम्पर्क में देश क्रमशः आ रहा था। ऐसे अनेक पश्चिमी लेखकों और चिन्तकों के साहित्य से भारतीयों का परिचय हो रहा था, जिनसे हमारे चिन्तनशील वर्ग को राष्ट्रप्रेम और स्वतंत्रता की भावना की प्रेरणा मिली। अंग्रेज़ी के माध्यम से ऐसे साहित्य से हमारा परिचय हो रहा था, जो योरप के उन्नीसवीं शताब्दी की मानवता, समानता, न्यायप्रियता और राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत था। इस साहित्य ने भारतीय युवकों को आत्म-चिन्तन के लिए प्रेरित किया, उनका ध्यान अपने देश की क्रमशः बढ़ती हुई ग़रीबी की ओर गया। ब्रिटिश व्यापार नीति के कारण हमारे घरेलू उन्नत और विकसित उद्योग-धंधे नष्ट होते जा रहे थे। अनेक क्षेत्रों में काम करनेवाले कारीगर बेकार हो चुके थे। इस स्थिति को देख-समझकर यहाँ का प्रबुद्ध वर्ग अंग्रेज़ों की साम्राज्य-वादी नीति का विरोधी होता गया।

इन्हीं परिस्थितियों में १८८५ ई० में इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना की गयी। ह्यूम महोदय के साथ सर फ़िरोज़शाह मेहता, दादा भाई नौरोजी और उमेशचन्द्र बैनर्जी जैसे लोग थे। परन्तु अपनी प्रारंभिक अवस्था में कांग्रेस का दृष्टिकोण सुधारवादी रहा और यह क्रम बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भी रहा है। उसके नेताओं में महादेव गोविन्द रानाडे, गोपालकृष्ण गोखले और मदनमोहन मालवीय जैसे नरम दल के नेता थे। ये नेता शासन व्यवस्था में इस प्रकार के सुधार चाहते थे जिनसे समाज अधिक गतिशील हो सके और स्वतंत्र रूप से व्यवस्था में भाग लेने के योग्य हो सके। उस शताब्दी के अंतिम वर्ष में लोकमान्य तिलक ने कांग्रेस को राष्ट्रीय आन्दोलन की ओर प्रेरित किया, जिससे आन्दोलन का यह रूप क्रमशः अधिक व्यापक और सघन होता चला गया।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ होने के साथ कुछ ऐसी राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियाँ उत्पन्न हुईं, जिनसे भारतीय जनमानस में स्वाधीन होने की भावना बलवती होती गयी है और उसको प्राप्त करने के लिए संघर्ष का मनोबल भी बनता गया। १९०५ ई० में लार्ड कर्ज़न ने बंगाल का विभाजन किया। उससे भारतीयों का मोह भंग हुआ। उसकी दमन नीति के कारण अंग्रेज़ी शासन के विरोध का देश का संकल्प दृढ़ होता गया। जनसमाज को यह अनुभव होने लगा कि वैधानिक साधनों से अपने नागरिक अधिकारों को प्राप्त करना कठिन है। अन्य देशों में गये हुए भारतीयों को अपने प्रति अनादर तथा उपेक्षा के व्यवहार का अनुभव हो रहा था। इससे उनके मन में व्यथा और क्षोभ का भाव था। इसी बीच दुर्भिक्ष और

महामारी के प्रकोप से देश की आन्तरिक स्थिति भी जर्जर हो चुकी थी। १९०५ में ही जापान ने रूस को परास्त किया। इससे भारतीयों को स्वतंत्रता संघर्ष के लिए प्रेरणा भी मिली।

इस असन्तोष की परिस्थिति में लार्ड मिण्टो को वाइसराय बनाकर भेजा गया। जिन्होंने तत्कालीन भारत सचिव मार्ले के साथ भारतीयों के सन्तोष के लिए १९०९ ई० में कुछ सुधारों की घोषणा की। इसे 'मिण्टो मार्ले सुधार' कहा गया है। इन सुधारों से जनसमाज को सन्तोष नहीं हुआ और हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने आन्दोलन को अधिक गतिशील किया। १९११ ई० में लार्ड हार्डिंग जब वाइसराय थे, जार्ज पंचम और साम्राज्ञी मेरी दिल्ली आये और वहाँ एक बड़ा दरबार किया गया। इस दरबार की घोषणा के अनुसार कलकत्ते से हटकर राजधानी दिल्ली बनी और बंगाल पूर्ववत् एक कर दिया गया। फिर भी असन्तोष बढ़ता ही गया।

इस बीच १९१४ ई० में यूरोप का पहला महायुद्ध शुरू हुआ। यह अंग्रेज़ों के लिए संकट का समय था। अंग्रेज़ों ने इस युद्ध का उद्देश्य लोकतंत्र की रक्षा घोषित किया। उन्होंने प्रचारित किया कि उनकी यह लड़ाई स्वतंत्रता और नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए है। युद्ध के बाद भारत को स्वतंत्र करने का आश्वासन भी दिया गया। इस महायुद्ध के बीच भारतीय रंगमंच पर मोहनदास कर्मचन्द गाँधी (महात्मा गाँधी) का आविर्भाव हुआ। उन्होंने हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को नयी दिशा प्रदान की। इस शताब्दी के पहले दशक में हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनों में संघर्ष की भावना बढ़ती जा रही थी। उसका कारण था कि हमारे नेताओं के मन में यह स्पष्ट होने लगा था कि अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद हमारे देश से बिना संघर्ष और बलिदान के जानेवाला नहीं है। आन्दोलनों में विद्यार्थी वर्ग भी भाग ले रहा था। शिक्षण संस्थाओं का बहिष्कार किया जा रहा था। कहीं-कहीं आन्दोलन का रूप उग्र भी हो रहा था। लोकमान्य तिलक उग्रतावादी नेता माने जाते थे। इस बीच विपिनपाल दास और अरविन्द घोष जैसे नेता सामने आ चुके थे। सरकार की नीति भी दमन की चल रही थी। सभाएँ राजद्रोह मानी गयीं और अनेक पत्र-पत्रिकाएँ बन्द की गयीं। 'केसरी' के संपादक लोकमान्य तिलक पर मुक़दमा चलाया गया। परन्तु महायुद्ध के दौरान अंग्रेज़ों की घोषणा के कारण भारतीयों ने उनकी सहायता की। और युद्ध के अनेक प्रयत्नों में सहयोग दिया। इसी बीच १९१५ ई० में गाँधी जी अफ्रीका से भारत आये। उन्होंने देश के स्वाधीन होने की कामना से अँग्रेज़ों की सहायतार्थ अपने देशवासियों को प्रेरित किया।

महायुद्ध के बाद अंग्रेज़ी शासन ने सही अर्थों में अपना वादा पूरा नहीं किया। इस कारण जन-समाज में असन्तोष था। परन्तु महायुद्ध के दौरान महात्मा गाँधी देश के सामने आ चुके थे। उनके राष्ट्रीय मंच पर आ जाने से हमारे स्वाधीनता के

संघर्ष को नयी दिशा और दृष्टि मिली। उन्होंने सत्य और अहिंसा की शक्ति को राष्ट्रीय आन्दोलन का आधार बनाया। इस प्रकार सत्याग्रह हमारे स्वतंत्रता संग्राम का प्रभावी अस्त्र बन गया। महात्मा गाँधी की राजनीतिक दृष्टि की सर्वाधिक महत्त्व की बात है कि बन्धुत्व, मानवता, सत्य और अहिंसा जैसे भानवीय मूल्यों को उन्होंने राजनीतिक चिन्तन और कार्यक्रम से जोड़ दिया। गाँधी जी ने अफ्रीका के गोरे शासकों के विरुद्ध संघर्ष किया था और उनके इन कार्यक्रमों का परिचय देश को मिल चुका था। इस कारण जन-समाज को उन्हें अपना नेता मान लेने में सरलता हुई। महत्त्व की बात है कि गाँधीजी ने कर्म के बिना चिन्तन को स्वीकार नहीं किया और उन्होंने अपने विचारों को निरंतर कर्म के स्तर पर प्रत्यक्ष किया है। इस प्रकार उन्हें जनता से जुड़ने में सरलता हुई।

प्रथम महायुद्ध में भारतीयों ने ब्रिटिश राज्य की पूरी सहायता की थी। उसके एवज़ में १९१९ ई० में 'मॉण्टेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट' के आधार पर कुछ सुधार मिले। इस रिपोर्ट के आधार पर केन्द्र और प्रान्तों की धारा सभाओं में भारतीय सदस्यों की संख्या कुछ बढ़ गयी। और सब जैसा का तैसा रहा। इससे जनसमाज का असन्तुष्ट रहना स्वाभाविक था। और इसीलिए उनका विरोध भी जारी रहा। दूसरी ओर वैधानिक ढंग से चलाये गये इस राजनीतिक संघर्ष को सरकार दबा देना चाहती थी। जलियाँवाले बाग़ का नृशंस हत्याकाण्ड इसी बीच का है। इन सब प्रतिक्रियाओं को देखकर १९२४ ई० में 'मुडीमैन कमेटी' बनायी गयी। परन्तु जब इस कमेटी की रिपोर्ट धारा सभा में प्रस्तुत की गयी, तब भारतीय सदस्यों ने उसके द्वारा प्रस्तावित व्यवस्था को अनुपयुक्त माना। देश की स्थिति बिगड़ती जा रही थी। उसका एक कारण हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगे भी थे।

जैसा कहा गया है इस समय तक राष्ट्र का नेतृत्व गाँधीजी के पास आ चुका था। उन्होंने १९२० ई० के बाद स्वतंत्रता के सारे संघर्ष को सत्य और अहिंसा के आधार पर संचालित किया। उनके व्यक्तित्व से आकर्षित होकर सभी वर्ग और स्तर के लोग इन असहयोग आन्दोलनों में शामिल हुए। राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष का यह दौर श्रीधर पाठक के जीवन का अन्तिम समय था। इन सभी आन्दोलनों का प्रभाव उस समय के साहित्यकारों पर पड़ना स्वाभाविक था। राष्ट्रीय भावना का जो रूप साहित्य में अभिव्यक्ति ग्रहण करता आ रहा था उसमें दृष्टि और दिशा का अन्तर आना स्वाभाविक था। द्विवेदी युग के रचनाकारों में उसकी अभिव्यक्ति को देखा जा सकता है।

निश्चय ही उन्नीसवीं शताब्दी से देश में चले आनेवाले राजनीतिक और सामाजिक आन्दोलनों का गहरा प्रभाव समाज के मानस पर पड़ा। इन आन्दोलनों की दृष्टि और दिशा में अन्तर आता गया और साथ ही सारा सांस्कृतिक वातावरण भी बदलता गया है। उसमें नये मूल्यों की खोज और उनकी स्वीकृति का क्रम भी

चलता रहा। साहित्य अपनी भावनात्मक अभिव्यक्ति में संस्कृति के मूल्यों का वाहक होता है। इसी कारण भारतेन्दु युग से द्विवेदी युग तक साहित्य में हमको एक ओर परंपरा के रूढ़िवादी विचारों, मान्यताओं और मूल्यों का विरोध मिलता है, तो दूसरी ओर नये विचार, नयी भावनाओं और नये मूल्यों की आकांक्षा भी मिलती है।

× × ×

निश्चय ही भारतेन्दु का युग साहित्य में एक नयी मानसिकता को विकसित कर रहा था। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से भारतीय समाज में जागरण को लक्षित किया जा सकता है। सामाजिक स्तर पर जनसमाज का ध्यान नयी परिस्थिति की ओर आकर्षित किया जाने लगा था। १८५७ ई० की भारतीय क्रान्ति में यद्यपि अंग्रेज़ों का देश पर प्रभुत्व स्थापित हो गया और राष्ट्रीय भावनाओं को कुचला गया, परन्तु उसके बाद जनसमाज में अधिकाधिक जागरूकता आती चली गयी। भारतेन्दु युग के साहित्यकारों ने इस नव चेतना और जागरण का प्रतिनिधित्व किया। भारतेन्दु तथा उनके साथ के कवियों ने देशवासियों को सान्त्वना प्रदान की और उनके आत्म-विश्वास को जगाया। इन साहित्यकारों ने एक ओर अपने समय के सामाजिक पतन और उसकी शोचनीय स्थितियों का वर्णन किया है, तो दूसरी ओर अतीत के गौरव का गान कर समाज में आत्म-विश्वास भी जगाया। यद्यपि भारतेन्दु युग के कवियों का अधिकांश काव्य एक स्तर पर परंपरा से जुड़ा है, पर उन्हें इस बात का अनुभव होने लगा था कि परंपरागत भक्ति और रीति काव्य से अपने युग का सही अनुभव व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह सही है कि भारतेन्दु और उनके समय के अन्य कवियों ने बहुत दूर तक परंपरा का आश्रय लिया है और उससे पूरी तरह अलग नहीं हो सके हैं। परंतु ध्यान देने की बात है कि इस युग के कवि अपने युग की भावनाओं से आंदोलित थे। और अपनी रचनाओं में प्राचीन और नवीन का योग इस प्रकार कर रहे थे कि प्राचीन परंपरा के आधार पर क्रमशः नवीन परंपरा का विकास संभव हो सका।

यद्यपि भारतेन्दु युग में काव्य की नयी धारा क्षीण रूप में प्रकट हुई, उसमें सामयिक समस्याओं और राष्ट्रप्रेम की अभिव्यक्ति को लक्षित किया जा सकता है। यह नयी काव्य प्रवृत्ति समाज के यथार्थ को व्यक्तिगत स्तर पर ग्रहण करने लगी थी। इस प्रकार भारतेन्दु युग में विषय, भाषा और छंद के नये विधान के साथ रोमैण्टिक भाव के स्वच्छंद रूप का प्रारंभ देखा जा सकता है। भारतेन्दु और उनके साथ के रचनाकारों की मानसिकता सीधे अर्थ में रोमैण्टिक भाव की ओर उन्मुख नहीं कही जा सकती, परंतु इस प्रवृत्ति को आगे विकसित होनेवाले रोमैण्टिक काव्य की आधार-शिला माना जा सकता है। पर इस रोमैण्टिक भावना की स्पष्ट अभिव्यक्ति श्रीधर पाठक में देखी जा सकती है। आचार्य शुक्ल ने पाठक जी को

हिन्दी का प्रथम स्वच्छंदतावादी कवि माना है।

इस युग में अन्य कवियों में भी प्रेम और प्रकृति के सौंदर्य की अभिव्यक्ति इस भाव से मिल सकती है। भारतेन्दु में स्वयं इस प्रकार की भावाभिव्यक्ति है। परंतु श्रीधर पाठक के अतिरिक्त इस युग के अन्य कवियों में भाव, भापा और छंद की परंपरा का मोह बना हुआ है। इस दृष्टि से श्रीधर पाठक को रोमैण्टिक भावधारा का प्रथम कवि मानना स्वाभाविक है। श्रीधर पाठक के साहित्य और मुख्यतः काव्य के परिवेश को समझने के लिए हमको उस आंदोलन को ध्यान में रखना होगा, जिसके अंतर्गत भारतीय समाज की अपने को मुक्त करने की आकांक्षा हर प्रकार से व्यक्त हुई है। भारतेन्दु युग के कवियों और लेखकों ने देश की संस्कृति के ह्रास और पतन के कारणों की ओर ध्यान दिया। उन्होंने पूरे समाज में सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक स्तर पर अनेक विषमताओं का अनुभव किया। उन्होंने यह भी सोचा कि इस शोचनीय स्थिति के मूल में पारस्परिक एकता और सद्भाव का अभाव है। भारतेन्दु देश की इस पतनोन्मुखी स्थिति का अनुभव करते हैं—

वैर फूट ही सों भयो, सब भारत को नास।
तबहूँ न छांड़त, याहि सब बँधे मोह के फांस॥

इस युग में अपनी पराधीनता और अवनति के मूल में अपने को ही कारण रूप देखा गया। इतिहास के आधार पर यह अनुभव किया गया कि हमारी परम्परित पराधीनता का कारण हममें एकता और अपनत्व का अभाव रहा है। इस प्रकार इस युग के रचनाकारों का ध्यान देश की विपन्नता, और दयनीय स्थिति की ओर गया। उन्होंने उस सत्य का अनुभव किया कि हमारी अवनति का कारण अपने समाज के प्रति हमारा उपेक्षा भाव है। जिस प्रकार इस युग के रचनाकारों को अपनी सामाजिक स्थिति का सही अनुभव हुआ है, उससे उनके मन में परिवर्तन की आकांक्षा स्वाभाविक है। उन्होंने एक ओर सामाजिक जीवन की कुरीतियों, रूढ़ियों ओर विषमताओं को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति दी, तो दूसरी ओर नये समाज की आकांक्षा को व्यक्त किया। इसके अंतर्गत ऐसे नये समाज की कल्पना निहित है जो इन बुराइयों से मुक्त होकर स्वस्थ मूल्यों का जीवन जी सकेगा।

यह अवश्य है कि इस काल के कवियों, रचनाकारों ने काव्य की अपेक्षा अपने निबन्धों और नाटकों में इस नये युग की आकांक्षा को अधिक अभिव्यक्ति दी है। उनके इस साहित्य में काव्य के परम्परित विपयों से हटकर अन्य समस्याओं को अधिकाधिक स्थान मिला। उस समय देश पराधीन था। उसकी आर्थिक स्थिति बिगड़ चुकी थी, उसका व्यापार और उद्योग नष्ट हो चुके थे और शिल्प तथा कलाओं को भी नष्ट किया गया था। इस नये युग में पाश्चात्य सभ्यता के अनुकरण

की प्रवृत्ति भी बढ़ती जा रही थी। दास मनोवृत्ति के कारण देशवासी अपनी प्राचीन संस्कृति के प्रति उपेक्षाशील हो रहे थे। पश्चिमी देशों की व्यापार नीति के कारण हमारे देश का धन धीरे-धीरे विदेश जा रहा था। इस प्रकार सामाजिक और आर्थिक पतन के साथ जन-समाज का मानसिक पतन भी हो रहा था।

भारतेन्दु युग के रचनाकार इस परिस्थिति के प्रति जागरूक थे। भारतेन्दु की उक्ति से यह स्पष्ट है—

भीतर-भीतर सब रस चूसै, हँसि-हँसि के तन-मन-धन मूसै।
जाहिल बातन में अति तेज, क्यों सखि साजन नहीं अंग्रेज ॥

(मुकरी)

अंग्रेज हर प्रकार से हमारे देश का शोषण कर रहे थे और देश विपन्न होता जा रहा था। यह एक ऐसी स्थिति थी जिसमें भारतीय समाज अपनी दीन-हीन स्थिति का बोध विवश भाव से कर रहा था। इस मनोभाव की अभिव्यक्ति इस युग के रचनाकारों ने अनेक प्रकार से की है। वर्तमान स्थिति की सापेक्षता में उनका ध्यान अपने गौरवपूर्ण अतीत की ओर जाना स्वाभाविक था। उनका ध्यान अतीत की ओर गया और उन्होंने पूर्व पुरुषों के गौरव और श्रेष्ठता का गान किया। इस प्रकार अपने पूर्वजों के गौरव गान से हमारी राष्ट्रीय भावना का उद्‌बोधन हुआ। भारतेन्दु युग के रचनाकारों को उतना श्रेय मिलना चाहिए।

१८८२ ई० में भारतीय सेना ने मिस्र देश में विजय प्राप्त की। और इस विजय से भारतेन्दु को अपने पूर्वजों की वीरता और शूरता का स्मरण आया। अपनी कविता में इस घटना के माध्यम से उन्होंने देशवासियों का ध्यान प्राचीन गौरव की ओर दिलाया। चौधरी बदरीनारायण भी इस विजय से प्रभावित हुए। उन्होंने इस विजय के आधार पर प्राचीन भारत के गौरव का स्मरण देशवासियों को दिलाया। साथ ही वर्तमान स्थिति के प्रति खेद भी प्रकट किया। वस्तुतः प्राचीन गौरव की यह चेतना और राष्ट्रीय जागरण का प्रारंभ श्रीधर के काव्य में अधिकाधिक अभिव्यक्त हुआ है। आगे चलकर द्विवेदी-युग में मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय, रूपनारायण पाण्डेय और मुकुटधर पाण्डेय जैसे कवियों में इस भावना का उत्कर्ष देखा जा सकता है।

भारतेन्दु युग में परम्परा और नवीनता के संयोग को हम देख चुके हैं। इस युग के कवियों में सामान्यतः दो वर्ग देखे जा सकते हैं। एक वर्ग में परंपरा का आग्रह था और वहाँ साहित्यिक रूढ़ियों को स्वीकार किया गया। दूसरा वर्ग परंपरा और रूढ़िवादिता से पूरी तरह मुक्त नहीं कहा जा सकता, पर इस वर्ग के रचनाकारों में देश और समाज की नयी परिस्थिति से उत्पन्न भावनाओं को अभिव्यक्ति मिली। पहले वर्ग के कवियों में मुख्यतः भक्ति और श्रृंगारपरक भावों

को कवित्त, सवैया जैसे छन्दों और पदों में अभिव्यक्ति मिली है। दूसरे वर्ग के कवि देश की परिस्थिति की ओर उन्मुख हुए हैं। देश की विपन्नता, महँगाई, अकाल, कायरता, आलस्य, असमानता, कलह, अधिकारियों के अत्याचार तथा अन्य अनेक कुप्रथाओं से ये कवि आन्दोलित हुए हैं। उन्होंने अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं को लावनी, खयाल, होली, कजली, रेख्ता तथा अन्य लोक प्रचलित छन्दों में अभिव्यक्त किया है। इस काव्य में ब्रजभाषा के स्थान पर सामान्य लोक में प्रचलित खड़ी बोली को माध्यम बनाया गया है।

इस युग के कई कवियों ने प्रचलित लोकगीतों में रचना की है। लावनी लोकगीत लोकप्रिय रहा है। इस छन्द का उपयोग भारतेन्दु, प्रताप नारायण मिश्र और बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' आदि ने अपनी रचनाओं में किया है। इसी प्रकार कजली जैसे लोकप्रिय छन्द में भारतेन्दु के अतिरिक्त अन्य कवियों ने भी रचना की। इस युग के प्रमुख कवियों ने इन लोक छन्दों में खड़ी बोली में रचना की है। लावनी छन्द में श्रीधर पाठक ने 'एकान्तवासी योगी' के नाम से गोल्डस्मिथ के 'द हर्मिट' का अनुवाद किया। लावनी के समान कजली में भी पर्याप्त रचनाएँ की गयीं और 'प्रेमघन' को इसके प्रयोग में अधिक सफलता मिली। इस प्रकार भारतेन्दु युग के कवियों का ध्यान साधारण लोक जीवन की ओर गया था। उन्होंने सहज जीवन से संबंधित अनेक विषयों का वर्णन किया है। अभी तक रीति परम्परा के अन्तर्गत प्रेम का वर्णन शास्त्रीय पद्धतियों और रीतियों के अनुसार किया जाता था। इन कवियों के काव्य में लौकिक प्रेम की भाव-व्यंजनाएँ मुक्त रूप से हुई हैं। उनमें अभिव्यक्त भावनाएँ सरल जीवन की स्वच्छन्दता से सम्बद्ध है। इस प्रकार हम यहाँ हिन्दी साहित्य में रोमैण्टिक काव्य का प्रारंभ देख सकते हैं और श्रीधर पाठक के काव्य में वस्तुतः इस भावना को अधिक स्पष्ट रूप मिल सका है।

हम यह पाते हैं कि भारतेन्दु युग के सामान्यतः प्राचीन परम्परा को स्वीकार करनेवाले कवियों में भी रोमैण्टिक प्रवृत्ति उभरने लगी थी। परन्तु इनके बीच श्रीधर पाठक सही अर्थों में रोमैण्टिक भावना के कवि हैं। यह अवश्य माना जा सकता है कि पाठक जी की इस भावाभिव्यक्ति के लिए इन कवियों ने भूमिका तैयार की है। परन्तु इन सभी कवियों के बीच ठाकुर जगमोहन सिंह का उल्लेख आवश्यक है, क्योंकि उनके काव्य में प्रेम और प्रकृति को जिस रूप में अभिव्यक्ति मिली है, उसमें स्वच्छंद भाव का उन्मेष पाया जाता है। उन्होंने प्रकृति और प्रेम को लेकर नये प्रयोग किए हैं और इस दृष्टि से वह अपने समकालीनों से अधिक मौलिक कहे जा सकते हैं। उनके काव्य में प्रेम की स्वानुभूतिपरक और प्रकृति की आत्मीय स्तर की अभिव्यक्ति मिलती है। उन्होंने प्रकृति का संश्लिष्ट रूप इस प्रकार ग्रहण किया है कि जीवन की गरिमा सहज ही व्यंजित हो जाती है। जिस प्रकार उनके प्रकृति सौंदर्य में विन्ध्य पर्वतमालाओं के आकर्षण को देखा जा

सकता है, उसी प्रकार उनके प्रेम की अभिव्यक्ति में श्यामा से उनके व्यक्तिगत प्रेम का संस्पर्श है।

रीतिकाल में शृंगारपरक काव्य केवल परंपरा और सौंदर्य विधान के रूप में था। इस युग में ठाकुर जगमोहन सिंह की रचनाओं में यह शृंगार भाव निजी अनुभूतियों में वैयक्तिक स्तर पर अभिव्यक्त हुआ है। अपने समसामयिक कवियों की अपेक्षा इस स्तर पर वह मौलिक है। यह व्यक्तित्व की निजी अभिव्यक्ति रोमैण्टिक काव्य का मूल तत्त्व है। और हिन्दी में इसका प्रारंभ ठाकुर जगमोहन की रचनाओं में माना जा सकता है। इसी प्रकार संस्कृत काव्य से प्रकृति के बिम्ब-विधान की परंपरा को उन्होंने निजी अनुभव के स्तर पर ग्रहण किया है। इस युग के कवियों में उनका प्रकृति काव्य मौलिक है। इन दोनों रोमैण्टिक प्रवृत्तियों का विकास उनके समकालीन श्रीधर पाठक के काव्य में हो सका है। यह अवश्य है कि श्रीधर पाठक में लोकजीवन की जो स्वच्छंदता पायी जाती है, वह जगमोहन सिंह के काव्य में नहीं।

बीसवीं शताब्दी के साथ हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल द्विवेदी युग में प्रवेश करता है। केन्द्रीय व्यक्तित्व होने के नाते द्विवेदी जी के नाम से इस युग को जाना जाता है। भारतेन्दु युग में हिन्दी के आधुनिक खड़ीबोली रूप का प्रयोग गद्य और पद्य दोनों रूपों में प्रारंभ हो चुका था। परन्तु इस युग में द्विवेदी जी ने सजग शिल्पी के समान भाषा में नयी चेतना और शक्ति का समावेश किया। उन्होंने विषय-वस्तु, साहित्य रूपों, भाषा और छंदों आदि के प्रयोग के बारे में न केवल नयी दिशा का अनुसंधान किया, वरन् उनको व्यवस्थित तथा संयमित करने का प्रयत्न भी किया। इस नियमन से भाषा में स्थिरता और एकरूपता आयी। भाषा में तत्सम रूपों का प्रयोग बढ़ा। काव्य में वर्णवृत्तों का प्रयोग अधिक किया गया, मात्रिक छंद खड़ी बोली की प्रकृति के अनुकूल नहीं माने गये। वस्तु के क्षेत्र में ऐसे कथानकों और पात्रों को लिया गया जिनके माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को विकसित किया जा सकता था। इस प्रकार इस काव्य में राष्ट्रीय भावना को जाग्रत करने के लिए अतीत के गौरव को अभिव्यक्ति देने वाले पात्रों को स्थान मिला। पुराण तथा इतिहास से ये कथाएँ और पात्र लिये गये और मूल्य प्रधान चरित काव्यों की रचना की गयी। स्पष्ट है कि इस युग में विषय-वस्तु, भाषा-शैली, काव्य-रूपों और छंद-विधान की दृष्टि से परंपरा और शास्त्र को स्वीकार किया गया है, परन्तु इनका उपयोग राष्ट्रीय भावनाओं के विकास के लिए हुआ है।

भारतेन्दु युग में खड़ीबोली का प्रयोग गद्य साहित्य में व्यापक रूप से हो रहा था, काव्य के क्षेत्र में ब्रजभाषा का प्रभाव बना हुआ था। परन्तु खड़ी बोली काव्य स्वच्छंद भावना का प्रतिनिधित्व करता है। वस्तुतः भाषा का यह नया रूप व्यापक जन-जीवन की अभिव्यक्ति को लेकर काव्य में और साहित्य के विविध

रूपों में प्रचलित हो रहा था। इस कारण इस भाषा का रूप भी स्वच्छंद था, उसमें स्थिरता और नियमन की कमी थी। काव्य की यह स्वच्छंद अभिव्यक्ति श्रीधर पाठक और ठाकुर जगमोहन सिंह के काव्य में स्पष्टता से देखी गयी है। इस युग में द्विवेदी जी ने भाषा, विषय और छंद-विधान की दृष्टि से साहित्य में संस्कार और व्यवस्था लाने का प्रयास किया। परन्तु उनका यह प्रयत्न नियमन की प्रवृत्ति के कारण एक स्तर पर इस स्वच्छंद काव्य धारा का प्रतिरोधी रहा है। जहाँ तक काव्य में खड़ीबोली के प्रयोग का प्रश्न है, श्रीधर पाठक ने १८८८ ई० में **हिन्दुस्थान पत्रिका** में प्रतिपादित किया था—"गद्य और पद्य की भिन्न-भिन्न भाषा होना हमारे लिए उतना अहंकार का विषय नहीं है जितना लज्जा और उपहास का है कि जिस भाषा में हम गद्य लिखते हैं, उसमें पद्य नहीं लिख सकते।"

इस युग में इसी बात का समर्थन महावीर प्रसाद द्विवेदी जी अधिक बल के साथ करते हैं—"यह निश्चित है कि किसी समय बोलचाल की हिन्दी भाषा कविता के स्थान को अवश्य छीन लेगी। इसीलिए कवियों को चाहिए कि वे क्रम-क्रम से गद्य की भाषा में भी कविता करें।" (रसज्ञ रंजन : कवि कर्तव्य)

द्विवेदी जी का प्रयत्न साहित्य को जनजीवन के स्तर पर उतारने का ऐसा ही था, जैसा भारतेन्दु का। परन्तु उनके सामने भाषा को व्यवस्थित रूप देने का लक्ष्य था। साथ ही, समाज के सामने राष्ट्रीय पुनरुत्थान के लिए वह प्राचीन आदर्शों को प्रस्तुत करना भी चाहते थे। इसी कारण उनकी प्रेरणा से लिखा गया काव्य इतिवृत्तात्मक और आदर्शवादी है। इस प्रवृत्ति से मुक्त और स्वच्छंद वैयक्तिक अभिव्यक्ति जिसका प्रारंभ पिछले युग में हो चुका था, बाधित हुई। खड़ी बोली काव्य में छंदों के प्रयोग के बारे में इस कठिनाई का अनुभव किया गया था कि व्रजभाषा काव्य में प्रयुक्त होनेवाले मात्रिक छंद खड़ी बोली की प्रकृति के अनुकूल नहीं है। इसीलिए उस समय खड़ी बोली की रचनाओं में लोकगीतों का प्रयोग किया गया था। उसी समय श्रीधर पाठक ने यह भाव व्यक्त किया था—"घनाक्षरी सवैया इत्यादि के अतिरिक्त अनेकों छंद ऐसे हैं कि जिनमें खड़ी बोली की कविता बिना कठिनाई और बड़ी सुघराई के साथ आ सकती है।"

(हिन्दुस्थान : १८८७)

द्विवेदी जी की प्रेरणा से जब हिन्दी के खड़ीबोली रूप में काव्य रचना का प्रचलन हुआ, तब संस्कृत वृत्तों का प्रयोग विशेष रूप से किया गया। उनका कहना है—"दोहा, चौपाई, सोरठा, घनाक्षरी, छप्पय और सवैया आदि का प्रयोग हिन्दी में बहुत हो चुका है। कवियों को चाहिए कि यदि वे लिख सकते हैं तो इनके अतिरिक्त और भी छंद लिखा करें। इनके साथ-साथ संस्कृत काव्यों में प्रयोग किए गये वृत्तों में से द्रुतविलम्बित, वंशस्थ, वसंततिलका आदि वृत्त ऐसे हैं, जिनका प्रयोग हिन्दी में होने से हिन्दी काव्य की विशेष शोभा बढ़ेगी।···पदान्त में अनु-

प्रासहीन छंद भी हिन्दी में लिखे जाने चाहिए।" (रसज्ञ रंजन : कविकर्तव्य)

विशेष रोचक बात है कि श्रीधर पाठक और द्विवेदी जी ने संस्कृत के वृत्तों के आधार पर रचना करने पर भी अन्त्य अनुप्रास का निर्वाह किया है। इसका अनुकरण रामचरित उपाध्याय, लोचन प्रसाद पाण्डेय और मैथिलीशरण गुप्त आदि कवियों ने गणवृत्तों की रचना में किया। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने अवश्य अपने 'प्रिय प्रवास' में शुद्ध संस्कृत वृत्तों के आधार पर अन्त्यानुप्रास का प्रयोग नहीं किया।

द्विवेदी युग की व्यापक काव्यधारा इतिवृत्त प्रधान है। उसमें इतिहास और पुराण के कथानक लिये गये हैं। उनके माध्यम से इन कवियों ने समाज को ऊँचे मानवीय मूल्यों की ओर प्रेरित किया। सामाजिक और राष्ट्रीय आदर्शों पर चलने का संकल्प सामने रखा। आदर्श प्रधान इन ऐतिहासिक और पौराणिक कथानकों के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक और राष्ट्रीय भावनाओं को अभिव्यक्ति मिली है। ये चरित्र हमारे राष्ट्रीय जीवन से अभिन्न होकर आदर्शों की ओर प्रेरित करनेवाले हैं। राम और कृष्ण जैसे चरित्र भारतीय परंपरा से इस प्रकार हिले-मिले रहे हैं कि उनके माध्यम से युग की चेतना को उद्बोधित करना संभव हो सका। अयोध्यासिंह उपाध्याय का 'प्रिय प्रवास' और गुप्त जी का 'साकेत' ऐसे ही महाकाव्य हैं।

नये काव्य में देश की सामाजिक स्थिति का वातावरण है और राष्ट्रीय आंदोलनों के संदर्भ व्यंजित हुए हैं। इनमें एक ओर देश की दरिद्रता, उदासीनता और निराशा को व्यंजित देखा जा सकता है और दूसरी ओर परतन्त्रता की भावना अभिव्यक्त होती है।

इन कवियों का ध्यान अपने समाज की बाह्य परिस्थितियों की ओर तो गया ही, साथ ही जीवन की ऐसी परम्पराओं और रीतियों की ओर भी गया जो इन्हें अंदर से खोखला कर रही थीं। भारतीय नारी की स्थिति दयनीय हो चुकी थी, दहेज की प्रथा चल रही थी। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह प्रचलित थे। इस प्रकार की स्थिति का वर्णन भारतेन्दु युग के कवियों में मिलता है। श्रीधर पाठक ने इस प्रकार की रचनाएँ की हैं—

प्रार्थना अब ईश की सब करो कर जुग जोर।
दीन बन्धु सुदृष्टि कीजै बाल विधवा ओर॥

(बाल विधवा : मनोविनोद)

इस प्रकार की समस्याओं पर द्विवेदी युग के प्रायः सभी कवियों की रचनाएँ मिलती हैं। भारतेन्दु युग से प्रारंभ होनेवाली राष्ट्रीय चेतना का द्विवेदी युग में विकास हुआ। उसी प्रकार इस युग में राष्ट्रीय काव्य का भी उत्कर्ष देखा जा सकता

है। भारतीयों में स्वदेश प्रेम और अपनत्व की भावना इस युग के काव्य में अनेक संदर्भों में अभिव्यक्त देखी जा सकती है। श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी और लोचनप्रसाद पाण्डेय आदि कवियों ने राष्ट्रप्रेम को अनेक रूपों में अभिव्यक्त किया है। गुप्त जी को भारत की अप्रतिम और अलौकिक भूमि पर जन्म लेने का गर्व है। रामनरेश त्रिपाठी को इस दिव्य देश में जन्म लेने का अभिमान है और श्रीधर पाठक जन्मभूमि की गरिमा व महिमा का गान करते हैं। भारत देश का सौंदर्य और उसकी महानता दूसरों के लिए स्पर्धा का विषय है—

जै-जै प्यारा भारत देश, जै-जै प्यारा जग से न्यारा।
शोभित सारा देश हमारा, जगत मुकुट जगदीश दुलारा ।।
जै सौभाग्य स्वदेश, जै-जै प्यारा भारत देश।

(देश गीत—भारत गीत)

इन कवियों ने क्षेत्रीयता और प्रान्तीयता को मिटाकर देश की समग्र कल्पना सामने रखी। उन्होंने सारे भारतवासियों को समान पूर्वजों का वंशज माना और अपनी परंपरित संस्कृति पर गौरव का अनुभव किया। राष्ट्रीय चेतना के इस स्तर पर इस युग के प्रायः सभी कवियों में समान भावना पायी जाती है। और यह राष्ट्रीय भावना व्यापक रूप में स्वच्छंद भावना को प्रेरित करनेवाली है।

भारतेन्दु युग के कवियों का ध्यान प्रकृति सौंदर्य की ओर गया था। श्रीधर पाठक और विशेष रूप से जगमोहन सिंह ने प्रकृति का वर्णन स्वतंत्र रूप से किया है। श्रीधर पाठक का प्रकृति के प्रति यह आकर्षण द्विवेदी युग में स्वच्छंद भावना के साथ विकसित हुआ है। प्रकृति का यह आकर्षण द्विवेदी युग के अन्य कवियों में पाया जाता है। द्विवेदी युग में स्वच्छंद भाव के कवियों के अतिरिक्त अन्य कवियों ने भी प्रकृति के सौंदर्य का निरीक्षण किया है। यह अवश्य है कि इन कवियों में भावात्मक सौंदर्य की अपेक्षा प्रकृति के वस्तुपरक सौंदर्य का अंकन अधिक है। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' महावीर प्रसाद द्विवेदी, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' और मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्य में ऐसा ही प्रकृति का वस्तुपरक वर्णन किया है। दूसरी ओर उनके समानान्तर रामनरेश त्रिपाठी, लोचनप्रसाद पाण्डेय, रूप नारायण पाण्डेय और श्रीधर पाठक जैसे स्वच्छंद भाव के कवियों ने आत्मीय भाव के स्तर पर प्रकृति को ग्रहण किया है।

कहा गया है कि द्विवेदी जी ने अपने युग में साहित्य पर अपना अनुशासन रखा है और शास्त्र तथा आदर्श की स्वस्थ परंपराओं को निरंतर प्रेरणा दी है। इस कारण उनके प्रभाव-क्षेत्र के कवियों ने ऐसे काव्य की रचना की है, जिसमें साहित्य के आदर्शों का अनुसरण किया गया और मानवीय मूल्यों को अभिव्यक्ति मिली। साथ ही उनके वृत्त के बाहर ऐसे कवि हैं, जो स्वच्छंद प्रवृत्ति के आधार

पर प्रेम और प्रकृति सौंदर्य की अभिव्यक्ति में मानवीय भावों को व्यंजित करते रहे।

यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि युग की नवचेतना और पुनर्जागरण का जो क्रम प्रारंभ हुआ था, वह किसी-न-किसी रूप में द्विवेदी युग के हर रचनाकार में अभिव्यक्ति पाता रहा है। इसीलिए इतिवृत्त के आधार पर अपने काव्य-ग्रंथों को रचने वाले 'हरिऔध' जी और गुप्त जी के काव्य में भी मानवीय आदर्शों के साथ यत्र-तत्र रोमैण्टिक प्रवृत्तियों को लक्षित किया जा सकता है। गुप्त जी के 'साकेत' और 'यशोधरा' के अंतर्गत प्रगीति शैली का भी प्रयोग किया गया है। हरिऔध जी के 'प्रिय-प्रवास' में राधा पवन दूत के द्वारा कृष्ण को अपना संदेश भेजती हैं। यह भी महत्त्व की बात है कि 'श्रीमद्भागवत' की प्रेम स्वरूपिणी राधा 'प्रिय-प्रवास' में प्रेमिका और समाज-सेविका के रूप में अंकित है। इसी प्रकार 'साकेत' की उर्मिला विरहिणी के रूप में लोकभूमि पर प्रस्तुत की गयी है। इन संदर्भों में रोमैण्टिक काव्य की वैयक्तिक भावना और लौकिक पृष्ठभूमि लक्षित की जा सकती है। इसी प्रकार इन कवियों के काव्य में प्रकृति का वस्तुपरक सौंदर्य कथावस्तु की स्थितियों और पात्रों की मनःस्थितियों के संदर्भ में अंकित हुआ है।

श्रीधर पाठक को इन दो युगों के परिवेश में रखकर देखने पर उनके रचनाकार का व्यक्तित्व हमारे सामने स्पष्ट होता है। भारतेन्दु युग में उन्होंने काव्य के क्षेत्र में नयी भूमिका प्रस्तुत की थी। भारतेन्दु युग के मध्ययुगीन रीति काव्य से प्रभावित क्षेत्र में उनका रचना-कर्म नवीनता का आग्रह लेकर गतिशील हुआ। इसी प्रकार द्विवेदी युग की इतिवृत्त प्रधान और आदर्शोन्मुखी काव्य के बीच उनका काव्य रोमैण्टिक भावाभिव्यक्ति के आधार पर अग्रसर हुआ। भारतेन्दु युग में वस्तु, भाव और भाषा को लेकर उथल-पुथल चल रही थी और उसके बीच पाठक जी को अपना नया मार्ग खोजना था। इस पथ पर वे अपनी मौलिक प्रतिभा के सहारे ही आगे बढ़े। उन्होंने खड़ी बोली के साथ ब्रजभाषा में भी काव्य-रचना की है। परन्तु अपनी सूक्ष्म दृष्टि से उन्हें हिन्दी के भावी काव्य का आभास था और विश्वास के साथ उस मार्ग पर वह आगे बढ़ते गये। उन्होंने यह समझा था कि आधुनिक युग के साहित्य को जिन भूमिकाओं पर उतरना है, उनके लिए हिन्दी भाषा का यह खड़ी बोली रूप अधिक उपयोगी है।

श्रीधर पाठक ने अपने युग जीवन के यथार्थ को देखा-परखा था। और उनके मन में अपने राष्ट्र के प्रति विश्वास था। साथ ही वे यह भी अनुभव कर रहे थे कि पाश्चात्य सभ्यता की उपलब्धियों के लिए हमें अपनी प्रगति को स्वीकार करना चाहिए। इसीलिए उनमें किसी प्रकार का दुराग्रह नहीं रहा है। उनके साहित्य में प्राच्य और पाश्चात्य का समन्वय देखा जा सकता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में,

अपने अनुवादों में भी, व्यापक मानवीय प्रेम, प्रकृति सौंदर्य और उच्च मानवीय आदर्शों को अभिव्यक्ति दी है। उनके साथ द्विवेदी युग के स्वच्छंन्द मनोभाव के पं. रामनरेश त्रिपाठी, रूपनारायण पाण्डेय और लोचन प्रसाद पाण्डेय जैसे कवियों ने प्रकृति और मानव के प्रेम और सौंदर्य की अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति दी है। मानवीय आदर्शों की भाव-व्यंजना भी इनके काव्य में देखी जा सकती है। परन्तु श्रीधर पाठक के काव्य में जैसा क्रमिक विकास और वैविध्य देखा जाता है, वैसा अन्यों में नहीं है।

२

जीवन : व्यक्तित्व और कृतित्व

कहा जाता है कि लगभग बारह सौ वर्ष पूर्व श्रीधर पाठक के पूर्वज पंजाब से ब्रज क्षेत्र में आए थे और उन्होंने जोंधरी को अपना निवास स्थान बनाया था। इस परिवार को चांदवार के महाराज चंद्रसेन से चौदह हज़ार बीघा भूमि फ़िरोज़ाबाद के निकट यमुना के किनारे प्राप्त हुई थी। कुछ पीढ़ियों तक इस ज़मींदारी का उपभोग इस वंश ने किया। बाद में मल्ल जाति के एक डाकू ने उनकी भूमि छीन ली। कुछ समय के बाद मल्ल को युद्ध में पराजित कर करौली के महाराज सोनपाल ने उसे अपने राज्य में मिला लिया। वर्षों बाद राजा सोनपाल के उत्तराधिकारी कर्णपाल के सामने उनके पूर्वज ने भूमि के अधिकार की बात रखी। उसने साठ बीघा भूमि इस परिवार को प्रदान की। यद्यपि इस परिवार के पास से ज़मींदारी तो चली गयी, पर शासक होने का सम्मान उन्हें मिलता रहा। जिस प्रकार ग्राम से बारात चलने पर उसके ज़मींदार को भेंट दी जाती है और तिलक प्राप्त किया जाता है, वैसा सम्मान इस परिवार को भी प्राप्त होता रहा। इसी परिवार में लौंगादेवी नामक एक सती भी हुई है। और ये नरोत्तम शर्मा की पत्नी मानी जाती है।

श्रीधर पाठक के पिता का नाम लीलाधर पाठक था। उनके पिता अर्थात् श्रीधर पाठक के पितामह लक्ष्मण मिश्र संतोषी और सात्विक ब्राह्मण थे। पिता-पुत्र दोनों को विद्याओं का ज्ञान सामान्य था। पर दोनों ही परम भक्त थे और दोनों का जीवन आदर्शमय था। उनके प्रपितामह श्रीकृष्ण मिश्र आदर्श भक्त थे और इन्हीं से इन लोगों को भगवद्भक्ति प्राप्त हुई। परन्तु पाठक जी के पिता के प्रपितामह कुशल मिश्र भाषा के परम प्रतिभाशाली कवि थे। उनकी 'बालकृष्ण चन्द्रिका' और 'गंगा नाटक' आदि रचनाएँ हैं। दूसरी ओर श्रीकृष्ण मिश्र के छोटे भाई राधाकृष्ण संस्कृत के बहुत अच्छे पंडित और पराक्रमी योद्धा थे। उनके पुत्र नारायण मिश्र पाठक जी के पिताजी के गुरु थे। और उनके पिताजी के सगे भाई

धरणीधर न्याय और धर्मशास्त्र के पंडित थे। उन्होंने चौदह वर्ष नदिया (नवद्वीप, बंगाल), शांतिपुर में निवास कर बड़े परिश्रम से विद्यार्जन किया था। न्याय के प्रसिद्ध ग्रंथ 'आत्मतत्त्व विवेक' पर आपने एक संस्कृत व्याख्या प्रस्तुत की। पाठकजी के पिता लीलाधर पाठक न तो कुशल मिश्र के समान विद्वान, कवि और लेखक थे और न शास्त्री धरणीधर के समान नैयायिक एवं शास्त्री ही। वह सच्चे गृहस्थ थे। परिवार के धर्मपालन और भक्ति-भावना में सहज जीवन व्यतीत करते थे। उनके घर से कभी कोई निराश नहीं गया। उनके व्यवहार में स्नेह और सरलता का पुट रहता था। वह शास्त्र के भक्त थे और उनका कर्मकाण्ड, धर्मशास्त्र और ज्योतिष में दृढ़ विश्वास था। भगवान् कृष्ण के प्रति उनकी अटूट भक्ति थी। भक्ति-भावना से प्रेरित होकर पदों की रचना भी करते थे। इस प्रकार वह भक्ति और काव्य का वातावरण अपने कुल में सुरक्षित रख सके। श्रीधर पाठक की माता का नाम लाड़ली देवी था। वह पोलरा (वृन्दावन) के कुलीन वंश की कन्या थी। उनमें अपने परिवार के अध्यवसाय, स्वतंत्रता और साहस के साथ सरलता अभिव्यक्त होती थी। कठिनाइयों और संघर्षों के बीच वह सदैव अपने पति की सहयोगिनी रही। इनसे ही श्रीधर पाठक का जन्म माघ कृष्ण १४ संवत् १९१६ (१८५९ ई०) में हुआ।

लीलाधर की संतानों की अकाल मृत्यु होती रही थी, इस कारण पति-पत्नी दुःखी भी थे। श्रीधर पाठक भी बाल्यावस्था में रुग्ण हो गये। यह समाचार लीलाधर को कोटला में मिला। उन दिनों वह कोटला के जमींदार ठाकुर उमरावसिंह के यहाँ भागवत्, रामायण और महाभारत आदि का पाठ किया करते थे। लीलाधर समाचार पाकर आशंकित हो उठे और खिन्न मन से जोंधरी के लिए रवाना हुए। गाँव के निकटवर्ती सती मंदिर के पास के अश्वत्थ वृक्ष के नीचे पहुँच कर वह रो उठे। वहाँ से जाते हुए एक साधु ने प्रदोषव्रत रखने के लिए कहा और विश्वास दिलाया कि उनका पुत्र अच्छा हो जायेगा। भगवान् की कृपा से श्रीधर अच्छे हो गये। स्मरणीय है कि लीलाधर पाठक की सात संतानों में केवल श्रीधर पाठक और दुर्गावती ही जीवित रहे।

कुछ समय बाद बालक श्रीधर का अक्षरारम्भ हुआ। उन्होंने वर्णमाला कठिनाई से सीखी, उसे सीखने और याद करने में अधिक समय लगा। वह पिताजी से और शाला में पढ़ते थे। अपने पिताजी से उन्होंने कौमुदी का 'संधि प्रकरण' पढ़ा। आगे परिव्राजक भागीरथी पुरी की सहायता से उनके अध्ययन का क्रम चलता रहा। परिव्राजक शास्त्री धरणीधर के प्रिय शिष्य थे। इससे पहले लीलाधर के पड़ोसी उमाशंकर सनाढ्य ने भी उनके विद्याध्ययन का क्रम चलाया था। पर उनके अध्ययन का यह क्रम ठीक नहीं चल सका। लीलाधर और उनके भाई शास्त्री धरणीधर के बीच मतभेद आ जाने के कारण लीलाधर को जोंधरी ग्राम छोडना

पड़ा। यह मतभेद दोनों भाइयों में बहन को लेकर हुआ था, जो पति के संन्यास ले लेने के कारण उनके पास रहती थी। पर इसके कारण उनके अध्ययन क्रम में अनियमितता आ गयी। उनका संस्कृत का अध्ययन रुक ही गया। उन्होंने स्वाध्याय के रूप में संस्कृत साहित्य का अध्ययन जारी रखा, पर अधिक लाभ नहीं हुआ। तभी उनका प्रवेश गाँव की हिन्दी पाठशाला में कराया गया। यहाँ उनका परिचय गणित, भूगोल और इतिहास जैसे विषयों से हुआ। इस नयी शिक्षा के प्रति उनका विशेष आकर्षण था। इस नयी पाठशाला से वे फ़िरोज़ाबाद तहसील के स्कूल में अध्ययन के लिए भेजे गये। यहाँ उनकी मौलिक प्रतिभा का परिचय मिलने लगा। फ़िरोज़ाबाद के इस स्कूल में प्रवेश पाने के पूर्व उनके कई वर्ष व्यर्थ बीते थे। तहसीली स्कूल के एक अध्यापक पं. जयराम की प्रेरणा से चौदह वर्ष की अवस्था में उनका बाधित अध्ययन फिर शुरू हुआ। पं. जयराम पाठशाला के विद्यार्थियों का अध्यापन बड़े मनोयोग से करते थे। उन्होंने श्रीधर पाठक को अध्ययन की प्रेरणा दी। अपने 'जीवन निर्माण' के इस प्रारंभिक शिलान्यास के महत्त्व का अनुभव पाठकजी ने स्वयं किया है। उनके प्रति पाठकजी की भावनाओं का परिचय उनकी इन पंक्तियों से मिलता है--

> **"पूज्य पं. जयराम जी उन हिन्दुस्तानी ग्रामीण सज्जनों के नमूने थे, जिनके कारण ग्राम्य समाज अपना गौरवयुक्त स्थान सुरक्षित किये हुए हैं। उनमें वे सब गुण थे जो एक साधारण मनुष्य को सच्चे मनुष्यत्व की पदवी प्रदान करते हैं।"**

श्रीधर पाठक ने १८७५ ई. में 'हिन्दी प्रवेशिका' परीक्षा पास की और उसमें उनका नम्बर प्रांत भर में पहला रहा। चार वर्ष बाद १८७९ ई. में उन्होंने अंग्रेज़ी मिडिल आगरा कालेज से उत्तीर्ण किया। फिर दो वर्ष बाद कलकत्ता विश्वविद्यालय की एण्ट्रेन्स परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। एफ़. ए. प्रथम वर्ष का अध्ययन भी उन्होंने शुरू किया था, पर प्राचार्य से झगड़ा हो जाने के कारण उन्हें अपना अध्ययन छोड़ना पड़ा। उनके अध्ययन का क्रम यहीं समाप्त होता है। उन्होंने इलाहाबाद में म्योर सेण्ट्रल कॉलेज में दो वर्ष क़ानून का अध्ययन भी किया, परन्तु उस समय वह गवर्नर के कार्यालय में नौकर थे और सरकारी कार्य से उनको नैनीताल जाना पड़ा, इस कारण क़ानून की परीक्षा दे पाना संभव न हुआ।

श्रीधर पाठक एण्ट्रेन्स परीक्षा उत्तीर्ण कर १८८१ में जीवन निर्वाह के लिए काम की खोज में प्रयाग आये। घर से वे केवल बीस रुपये लेकर चले थे। कुछ समय नौकरी पाने की आशा से उन्होंने पोस्ट मास्टर जनरल के कार्यालय में अवैतनिक कार्य भी किया। इसी समय उनका परिचय मदन मोहन मालवीय के पितृव्य जयगोविंद मालवीय से हुआ। उन्होंने इलाहाबाद के गवर्नमेण्ट हाईस्कूल में उनको अध्यापक का पद दिला दिया। पर दो-तीन माह के बाद ही उनको कलकत्ता में

सेन्सर कमीशन के कार्यालय में साठ रुपये मासिक वेतन पर नौकरी मिल गयी। इसी नौकरी के सिलसिले से पहली बार उन्हें शिमला जाने का अवसर मिला। वहाँ हिमालय के सुन्दर दृश्यों से वह बहुत आर्कपित हुए। यह नौकरी केवल ग्यारह मास की रही और वह प्रयाग वापस आ गये। और रेलवे की नौकरी मिल जाने से वह रेवाड़ी चले गये। परन्तु रवाना होने के पहले वह गवर्नर के कार्यालय में प्रार्थना-पत्र देकर गये थे। कहते हैं कि कार्यालय के अधिकारी ने पाठक जी के प्रार्थनापत्र की अंग्रेज़ी से प्रभावित होकर उन्हें तीस रुपये मासिक वेतन पर पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेण्ट में नियुक्त किया। वह रेलवे की नौकरी छोड़कर इस प्रकार फिर प्रयाग आ गये। अपने विभागीय कार्य के संबंध में उन्हें अनेक बार नैनीताल जाने का मौक़ा मिला। शिमला के समान ही वह नैनीताल के प्राकृतिक दृश्यों की ओर आर्कपित हुए। १८९८ ई. में वह आगरा को स्थानांतरित हुए, वहाँ पर डिवीज़नल हेडक्लर्क बनाये गये और उनका वेतन दो सौ रुपये मासिक था। १९०१ ई. में नव स्थापित इरिगेशन कमीशन के सुपरिण्टेण्डेण्ट के पद पर तीन सौ रुपये मासिक वेतन पर नियुक्त किया गया। इस पद पर रहने का उन्हें विशेष लाभ हुआ, उन्हें पूरे भारत के भ्रमण का अवसर मिला। १९०३ ई. में इस कमीशन के समाप्त होने पर उन्होंने तीन मास का अवकाश लेकर कश्मीर का भ्रमण किया।

अपनी सरकारी नौकरी के सिलसिले में उन्हें पुनः शिमला जाने का अवसर मिला था और वहाँ अपने किसी अंग्रेज अधिकारी से संघर्ष हो जाने के कारण १९१४ ई. में उन्होंने सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण कर लिया। उनको अवकाश पाने के बाद डेढ़ सौ रुपये की मासिक पेंशन मिलने लगी। और इसके बाद वह निरंतर साहित्यिक कार्यकलाप में लगे रहे। उन्होंने इलाहाबाद के लूकरगंज मुहल्ले में रहने के लिए 'पद्मकोट' नाम का एक सुन्दर बंगला बनवाया था। अवकाश ग्रहण करने के बाद स्थायी रूप से वह प्रयाग में निवास कर साहित्यिक कार्यक्रमों में भाग लेते रहे। उनके बंगले में साहित्यकारों का आना-जाना चलता रहता था। पाठक जी एक सुरुचिसम्पन्न व्यक्ति थे और उन्होंने अपने बंगले के उद्यान को सुन्दर ढंग से आयोजित किया था। प्रायः वह अपने उद्यान में कार्य करते हुए देखे जाते थे। उनका बंगला और उद्यान सुरुचि के साथ सजाये गये थे। उनको स्वच्छता बड़ी प्रिय थी। और इसी कारण वह अपने बंगले के फाटक तक को बड़ी सावधानी से बंद रखते थे।

पाठक जी का परिवार परम्परावादी सनातनी था। उनके पिता जी के जीवित रहने तक उन सभी नियमों का पालन किया जाता था, जिनको मर्यादा के अंतर्गत माना जाता है। पाठक जी इस वातावरण में भी स्वतंत्र विचार और भावना के व्यक्ति थे। जीवन की सम्पूर्णता में उनका विश्वास था और मानवीय संवेदना के प्रति उनकी निष्ठा थी। वह कभी जीवन की एकपक्षीय दृष्टि को अपनाने में समर्थ

नहीं हुए और उसका कारण उनका मानवतावादी उदार दृष्टिकोण था। उनका सारा रोमैण्टिक, प्रकृति सौंदर्य और राष्ट्रीय प्रेम का काव्य इस बात का प्रमाण है। उनकी उदारता का परिचय इस बात से मिलता है कि उनके मन में अपने पिता के प्रति श्रद्धा भाव बना रहा, जबकि वे उनके विचार और व्यवहार से संतुष्ट नहीं थे। उनके बारे में पाठक जी ने सदा परम आदर और श्रद्धा से लिखा है। उनकी प्रेरणा से ही उन्होंने 'श्री गोपिका गीत' और भक्तिपरक रचनाएँ की थीं। अपने पिता के लिए भागवत की प्रतिलिपि भी तैयार की थी। उनका प्राचीन साहित्य के प्रति श्रद्धाभाव था। और वर्णाश्रम धर्म पर भी उनका विश्वास था। परन्तु उनमें साम्प्रदायिक संकीर्णता और अन्धविश्वास का लेश नहीं था। उनमें विचारों की उदारता पायी जाती थी। इस कारण अपने से भिन्न विचार रखनेवाले व्यक्तियों से उनका सहज व्यवहार रहता था।

पाठक जी दूसरों की सहायता करने के लिए प्रस्तुत रहते थे। और अपने साथ काम करनेवाले व्यक्तियों का ध्यान विशेष रूप से रखते थे। उनके पास एक व्यक्ति रसोइया का काम करते हुए उनसे अंग्रेज़ी और हिन्दी सीखता रहा। और बाद में उनकी सहायता से ही उसको 'सर्वे आफ़ इंडिया' में नौकरी भी मिल गयी। इसी प्रकार मलाया के एक प्रवासी भारतीय ने उनको अपने पुत्र की देख-रेख रखने के लिए लिखा। वह उस समय भारत में था। उन्होंने उसके पुत्र की सदा चिंता रखी और नौकरी दिलाने में भी सहायता की। पढ़ाने में उनकी बहुत रुचि थी और जो भी उनके पास अध्ययन के लिए आता था, उसे उत्साह के साथ वह शिक्षा दान देते थे। उनको जिस प्रकार स्वयं अध्ययन करने में रुचि थी, उसी प्रकार दूसरे के अध्ययन में सहायता देने का भी उत्साह था। एक बार हिन्दी के प्रसिद्ध पत्रकार बालमुकुन्द गुप्त ने अंग्रेजी सीखने का संकल्प किया, तब पाठक जी ने उनको पूरी सहायता दी। गुप्तजी के नाम उनके इस पत्र से उनके उत्साह का अनुमान लगाया जा सकता है—

"मित्रवर,

१८ का कृपा पत्र प्राप्त हुआ—आपका साहस और उत्साह (विद्योपार्जन में) सराहने योग्य है, चार रीडर आपने समाप्त कर लीं, यह सुनकर बड़ा आनंद हुआ। Practical English के लिए यदि रामकृष्ण खत्री, बनारस को लिखिएगा तो वह वी. पी. पी. से भेज देगा। प्रथम पाठ मँगाइएगा। दाम पाँच-छः बरस हुए उन्नीस या बीस आने था। अब भी वही या कुछ कम होगा—।" गुप्त जी के नाम उनके दूसरे पत्र से उनका अपने अध्ययन के प्रति उत्साह प्रकट होता है। "आप अवश्य कापी मेरे पास भेजिये, मैं उसे देखकर पूर्ववत् लौटा दिया करूँगा और कम्पेयरिंग कर लेना भी अच्छा होगा। मैंने उर्दू सीखने का आरंभ पुनः किया है

और शायद शब्दों के अर्थों के लिए आपको कष्ट देना पड़ेगा।"

पाठक जी अध्ययनशील थे, परन्तु उनमें अर्थ संदर्भों को सहज ही ग्रहण करने की प्रचुर क्षमता थी। प्रायः वह किसी पुस्तक को आदि से अंत तक नहीं पढ़ते थे। यत्र-तत्र पृष्ठों को पलटकर विषय-वस्तु से परिचित हो जाया करते थे। उनका यह अभ्यास था कि जिस दृश्य, वस्तु अथवा व्यक्ति से वे प्रभावित होते थे, उसके बारे में अपने प्रभावों और विचारों को अंकित कर लेते थे। यहाँ तक कि पलंग पर आराम करते हुए या सोने के लिए जाने पर वह पेंसिल और काग़ज़ साथ रख लेते थे और किसी विचार या भाव के मन में उठते ही उसे उसी समय अंकित कर लेते थे। पाठक जी अन्य व्यक्तियों की रचनाओं को बड़े मनोयोग से सुनते थे और रचना पर उनकी राय जानने के लिए आग्रह किए जाने पर हर बार वह बड़ी विनम्रता से अपना मत प्रकट करते हुए यह भी कहते थे कि यह मेरी निजी राय है कि जो कुछ आप करें, सोच-विचार कर करें।

पाठक जी का जीवन राजकीय सेवा में बीता था। पर उनके मन में अपने देश और राष्ट्र के प्रति अगाध प्रेम था। उन्होंने अपना यह राष्ट्रप्रेम मुक्त भाव से अभिव्यक्त भी किया है। वह जीवन भर राष्ट्रीयता के समर्थक रहे और उनकी कविताएँ और गीत, विशेषकर भारत गीत उनकी राष्ट्रीयता के उदाहरण हैं। अपने समसामयिक अन्य महत्त्वपूर्ण कवियों के समान उन्होंने देश की दुर्बलता, पतनशीलता और पराधीनता के प्रति अपना दुःख और क्लेश व्यक्त किया है और अपने देशवासियों को इस तंद्रा से जगाने का उद्‌बोधन किया है। वृद्धावस्था में भी पाठक जी की स्फूर्ति और क्रियाशीलता युवकों से कम न थी। डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठीजी ने उनके बारे में लिखा है—"यद्यपि पाठकजी की अवस्था साठ वर्ष से अधिक की हो चुकी है तथापि उनका दिल न तो थका ही था और न बूढ़ा ही हुआ था।···पाठकजी नयी-से-नयी युक्ति और नवीन सभ्यता से प्रसूत नये भावों को भी बड़े उत्साह और सहानुभूति से सुनते तथा उनका यथोचित सम्मान भी करते।"

पाठक जी विनोदप्रिय व्यक्ति थे। उनके मुख पर उदासी शायद ही कभी देखी गयी हो। वह हँसोड़ भी थे। बहुधा अपने मित्रों की नक़ल उतारा करते थे। बालकृष्ण भट्ट की इलाहाबादी बोली में उन्होंने 'देहरादुनवा' नामक हास्यपरक रचना भी की थी।

द्विवेदी युग के प्रायः सभी प्रमुख साहित्यकारों का पाठक जी से संपर्क और संबंध रहा है। साहित्यिक मतभेद के कारण इनमें से कई लेखकों से उनका साहित्यिक वाद-विवाद भी चला था। बालमुकुन्द गुप्त, महावीरप्रसाद द्विवेदी और राय देवीप्रसाद इनमें प्रमुख हैं। परन्तु इस प्रकार के वाद-विवाद से उनके आपसी संबंध में कुछ अंतर नहीं पड़ा। कभी किसी प्रसंग में मनमुटाव हुआ भी तो अंततः वह मित्रता में ही पर्यवसित हुआ। बालमुकुन्द गुप्त के सम्पादन काल में

'भारत-मित्र' में अपनी आलोचना से पाठक जी ने क्षुब्ध होकर अपनी रचनाएँ भेजना बंद कर दिया था। परन्तु इस संबंध में गुप्तजी ने उनको बहुत ही आत्मीय पत्र लिखा और पाठक जी संतुष्ट हो गये। फिर उनमें मित्र-व्यवहार चलता रहा। इसी प्रकार कामताप्रसाद गुरु से भी उनका इस प्रकार का साहित्यिक विवाद चला। यह विवाद 'प्रयाग समाचार' में प्रकाशित हुआ। यह विवाद पद्यों में चला था और बड़ा रोचक था, परन्तु इस प्रकार के वाद-विवाद में मनोमालिन्य का कोई प्रभाव नहीं था।

पाठक जी का नारी के प्रति विशेष आदर-भाव रहा है। प्रारंभ से ही उनके मन में भारतीय नारी का ऐसा चित्र रहा है जिसमें वह अनेक युगों से दलित और पीड़ित रही है। और अनेक आघातों को सहज ही सहन किया है। इसीलिए स्त्री उनके आदर की पात्र रही है। और पुरुष के समान उसे सम्मान और अधिकार देने के वह पक्षधर रहे हैं। उन्होंने पश्चिमी देशों की नारी की निर्लज्ज स्वच्छंदता को पसंद नहीं किया, साथ ही भारतीय नारी के नियंत्रित और बाधित व्यक्तित्व के भी वह विरोधी थे। उनके मन में एक ऐसी नारी का व्यक्तित्व था, जिसमें भारतीय और योरोपीय नारी के गुणों का संयोजन हो। उन्होंने नारी शिक्षा पर इसी कारण बहुत बल दिया और अपनी पुत्री ललिता पाठक को उसी प्रकार उच्च शिक्षा दी, जिस प्रकार अपने दोनों पुत्रों, गिरिधर और वाग्धर को।

पाठकजी की स्वच्छंद प्रवृत्ति के आधार में उनका प्रकृति प्रेम देखा जा सकता है। प्रकृति के सौंदर्य के प्रति उनका आकर्षण बालजीवन से ही देखा जा सकता है। अपने बालपन में ही उन्हें प्रकृति के मुक्त वातावरण में घूमने की बहुत रुचि थी। प्रकृति के साथ आनंद के साथ समय बिताने में उन्हें किसी साथी, मित्र की भी अपेक्षा नहीं थी। उनको वृक्षों, लताओं, कुञ्जों और पशु-पक्षियों के पर्यवेक्षण में विशेष रुचि थी। किसी भी ऐसे वातावरण में उनको तन्मय देखा जा सकता था। संयोग से अपने जीवन के अगले क्रम में उन्हें हिमालय के प्रकृति सौंदर्य को देखने के अनेक अवसर मिले और जैसा कि कहा गया, उन्हें अपनी नौकरी के प्रसंग से शिमला और .मसूरी जाने का अवसर भी मिला। कश्मीर जाने का सुयोग उन्होंने छुट्टी लेकर प्राप्त किया। इस प्रकार प्रकृति के प्रति उनका आकर्षण और आत्मीय भाव निरंतर जीवन में देखा जा सकता है। और यह प्रकृति-प्रेम मानव-प्रेम के साथ उनके काव्य का मुख्य भाव जगत भी रहा है।

अपने जीवन की सुख-सुविधा के बीच पाठक जी को अपने जीवन के अंतिम वर्षों में दमा जैसे असाध्य रोग का कष्ट झेलना पड़ा। वर्षों इसकी पीड़ा उन्हें सहनी पड़ी। इसके कारण कई बार जलवायु परिवर्तन के लिए यात्राएँ करनी पड़ीं। इस संबंध में लोचनप्रसाद पाण्डेय और जगन्नाथ मिश्र से उनका पत्र-व्यवहार भी हुआ। डाक्टरों की राय से उन्होंने सपरिवार जलवायु परिवर्तन की

दृष्टि से देहरादून की यात्रा की। वहाँ लाभ न होने पर शिमला गये। परन्तु वहाँ भी कोई लाभ नहीं हुआ। इसी यात्रा के प्रसंग में पाठक जी ने 'देहरादून' नामक रचना लिखी। यह रोग निरंतर उनको कष्ट देता रहा। इसी रोग के संदर्भ में १६२८ के सितम्बर माह में वह मसूरी गये। धीरे-धीरे इस रोग से वह जर्जर हो चुके थे। और उनका मन तटस्थ होकर ईश्वर पर निर्भर हो चुका था। प्रो. सत्यव्रत ने मसूरी में उनसे नैनीताल जाने का प्रस्ताव किया था। तब उन्होंने इसी भाव से उत्तर दिया—"मसूरी तो मेरे लिए नैनीताल की अपेक्षा भी हितकर है।" आगे फिर उन्होंने दार्शनिक भाव से कहा—"अपने को निराश्रय अनुभव करना महापाप है। मनुष्य में स्व-शक्ति होती है। उसका विकास करना ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। शक्ति का विकास और सौंदर्य का विकास एक ही बात है। इसी को मैं ईश्वर-शक्ति कहता हूँ।" पाठक जी उन दिनों मसूरी में 'विलो लांज' में थे। गुरुकुल काँगड़ी के आचार्य रामदेव ने पाठक जी से काँगड़ी चलने का प्रस्ताव किया। तब पाठक जी ने करुणा भाव से उत्तर दिया—"अब तो आप लोगों के कंधों पर चढ़कर परलोक की यात्रा करूँ।" ६ सितम्बर को उन्हें दस्त में खून आया। लोगों ने बाहर से डॉक्टर बुलाने का विचार रखा। पर पाठक जी का उत्तर था—"भइया, रहने दो। वह मेरा क्या बना लेंगे।" १२ सितम्बर को उनके पुत्र गिरिधर मसूरी पहुंचे। और यह निश्चय किया गया कि १४ को पाठक जी को लेकर वहाँ से रवाना होना है। १३ सितम्बर को प्रो. सत्यव्रत से पाठकजी ने कहा—"कुछ होगा नहीं।" सत्यव्रत ने सहारा देना चाहा—"आप शीघ्र ही ठीक हो जाएँगे।" इसपर पाठक जी ने कहा—"विपरीततामुपगते हि विधौ विफलत्व-मेति बहु साधनता।"

उनके पुत्र गिरिधर ने उनको नीचे ले चलने का आग्रह किया। इस पर उन्होंने कहा—'कल…कल तो मैं उल्टी करता हुआ जाऊँगा।" १३ सितम्बर को अपने पिता के रोग को बढ़ता हुआ देखकर गिरिधर ने अपने भाई वाग्धर और बहिन ललिता को पत्र लिख दिये। सायंकाल तक रोग बढ़ता ही गया, बिना सहारे के उनके लिए उठना सम्भव नहीं था। धीरे-धीरे हृदय की गति अवरुद्ध हो गयी। डॉक्टर ने इंजेक्शन दिया और थोड़ी साँस फिर चली। पर जो होना था वह हुआ, साँस फिर न लौटने के लिए चली गयी। १३ सितम्बर को साढ़े आठ बजे रात में उनका निधन हुआ। १४ सितम्बर को उनकी अर्थी की शव-यात्रा श्मशान की ओर वेदमंत्रों के उच्चारण के साथ शुरू हुई। लाढौर बाज़ार होते हुए श्मशान पहुँचकर दाह-संस्कार हुआ।

पाठक जी के निधन से द्विवेदीयुग का एक विशिष्ट व्यक्तित्व चला गया। लूकरगंज में उनके पद्मकोट की साहित्यिक प्रभा मंद हो गयी। उनके पीछे परिवार में उनकी पत्नी, पुत्री ललिता और पुत्र गिरिधर तथा वाग्धर को बहुत व्यथा हुई।

नगर का साहित्यिक वातावरण प्रभाहीन हो गया। उनके मित्रों, परिचितों और प्रशंसकों को उनका अभाव बहुत खला। पाठक जी अपनी भाव-प्रवणता, संवेदनशीलता, मानवीय परिस्थितियों के अंकन तथा सौंदर्य प्रेम की अभिव्यक्ति के साथ हिन्दी जगत् के सामने मौलिक आकर्षण के रूप में आये थे। हिन्दी साहित्य को उन्होंने लोकप्रिय और स्तरीय बनाया। उनके काव्य में मानव-सत्य का विश्वजनीन भाव-सत्य अभिव्यक्त हुआ था और इस प्रकार हिन्दी-साहित्य को उनसे नयी दिशा मिली थी। इस कारण हिन्दी-जगत् ने उनके अभाव का अनुभव किया और उनके प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित की। अपने जीवनकाल में भारतेन्दुयुग से द्विवेदीयुग तक उन्होंने साहित्यिक रूढ़ियों और शास्त्रीय बंधनों से निरंतर संघर्ष कर हिन्दी काव्य को मुक्त किया और मानवीय भावात्मक अभिव्यक्ति के रूप में विकसित किया। उन्होंने हिन्दी काव्य को वैयक्तिक अनुभूति के स्तर पर मानवीय भावनाओं का आधार प्रदान किया, जिस पर उसका आगे का काव्य विकसित होता आ रहा है।

× × ×

श्रीधर पाठक बचपन से भावशील थे और अपने परिवेश से प्रेरणा पाकर रचना करते थे। काव्य की परंपरा से अधिक वह निजी प्रतिक्रिया और अनुभव के आधार पर कविताएँ लिखते थे। यही कारण है कि उनमें परम्परा पालन या रीति के अनुसरण की अपेक्षा भावशीलता और संवेदनीयता की रोमैण्टिक प्रवृत्ति अधिक परिलक्षित हुई है। उनकी प्रारंभिक रचनाओं का संग्रह पहली बार १८६२ ई० में **'मनोविनोद'** के नाम से कलकत्ता के भारतमित्र प्रेस से प्रकाशित हुआ। इसका परिवर्द्धित-संशोधित संस्करण हरिप्रकाश प्रेस, काशी से प्रकाशित हुआ और उसके अन्तिम रूप का प्रकाशन १६१७ ई० में ओंकार प्रेस, प्रयाग से हुआ। इस संस्करण से **'जगत सचाई सार'** और **'गड़रिया और आलिम'** स्वतंत्र रूप में प्रकाशन की दृष्टि से निकाल दिये गये हैं। तदुपरांत स्वतंत्र रूप से लिखी गयी **'आर्यगीता'** इसमें शामिल की गयी। इसमें 'बालविलास' और अन्य असमाप्त रचनाओं को भी शामिल किया गया है।

विद्यार्थी जीवन से पाठक जी को भूगोल विषय में विशेष रुचि थी। १८८५ ई० में उन्होंने हिन्दी-माध्यम से भूगोल का अध्ययन करनेवाले छात्रों के लिए 'बाल भूगोल' नामक ग्रंथ लिखा। इसमें विषय को सरल भाषा-शैली में समझाया गया है। परिभाषाएँ, उदाहरण तथा विषय का विवेचन गद्य में है। अंत में वर्ण्य-विषय पर कविताएँ लिखी गयी हैं।

पाठक जी रोमैण्टिक मनोभाव के कवि थे। इसी कारण, अंग्रेज़ी कवि गोल्डस्मिथ के काव्य की ओर उनका आकर्षित होना स्वाभाविक था। उन्होंने उनके तीन खण्ड-काव्यों का अनुवाद इसी प्रेरणा से किया है। सबसे पहले **'दि हर्मिट'** का अनुवाद लावनी जैसे लोक-छंद में उन्होंने किया। इसमें एडविन और अंजलेना की

प्रेम-कथा को स्वच्छंद भाव से प्रस्तुत किया गया है। मूल के चालीस छंदों को पाठक जी ने उनसठ छंदों में प्रस्तुत किया है। इसका प्रथम प्रकाशन १८८६ ई० में 'एकांतवासी योगी' के उपयुक्त नाम से किया गया। इस बीच 'जगत सचाई सार' लिखा गया था और इसका पहला प्रकाशन बनारस की साप्ताहिक 'काशी-पत्रिका' में १८८७ ई० में हुआ। बाद में यह रचना पहले 'मनोविनोद' के पहले खण्ड में और बाद में १९१६ ई० में स्वतंत्र रूप में प्रकाशित हुई।

गोल्डस्मिथ के प्रथम प्रेम-काव्य के अनुवाद के तीन वर्ष बाद १८८९ ई० में उन्होंने उनके अन्य खण्ड-काव्य 'दि डिज़र्टेड विलेज' का अनुवाद 'ऊजड़ग्राम' के नाम से प्रकाशित किया। इस रचना की भाषा व्रजभाषा है। यह रचना ५४४ पंक्तियों में समाप्त हुई है और इंग्लैण्ड के एक गाँव का उसके विकास और पतन के क्रम में वर्णन है। गाँव के क्रमशः परिवर्तनों का वर्णन कवि ने मार्मिक शैली में किया है। इसके बाद उन्होंने गोल्डस्मिथ के तीसरे काव्य 'दि ट्रेवलर' का अनुवाद 'श्रान्त पथिक' के नाम से प्रस्तुत किया है। इस काव्य की प्रारंभिक पंक्तियों में गोल्डस्मिथ का अपने बड़े भाई के प्रति आंतरिक प्रेम अभिव्यक्त हुआ है। फिर कवि निरंतर यात्रा करता हुआ आल्प्स पर्वत के उच्च शिखर पर पहुँचता है। वह ऐसे स्थान की खोज में है, जहाँ उसे सुख-शांति मिल सके। सारे ऊहापोह के बाद और विभिन्न देशों के निवासियों की स्थिति पर विचार कर कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि मनुष्य का सच्चा सुख उसके अंतः से उसे प्राप्त होता है।

जैसा कि बताया जा चुका है, पाठक जी तीन माह का अवकाश लेकर १९०३ ई० में कश्मीर गये थे। अपने प्राकृतिक सौंदर्य के लिए कश्मीर जग-प्रसिद्ध है। उसे भारत का स्वर्ग कहा गया है। पाठक जी कश्मीर की पर्वतमाला, घाटियों, वादियों और झीलों के सौंदर्य पर मुग्ध थे। उन्होंने अपनी इस यात्रा के अनेक सुंदर दृश्यों और अनुभवों को काव्याभिव्यक्ति दी। उनकी इस रचना का नाम 'कश्मीर सुषमा' है, जो १९०४ ई० में लिखी गयी थी।

१९०६ ई० में उनके पिता लीलाधर की मृत्यु हुई। पाठक जी को अपने पिता जी के चले जाने से बहुत दुःख हुआ, उनके मन में पिता के प्रति गहरी श्रद्धा और प्रेम-भावना थी। उनके वियोग से व्यथित होकर उन्होंने 'आराध्य शोकांजलि' नामक शोक-काव्य की रचना की, जिसमें उन्होंने अपने पिता के चरणों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है। आगे चलकर पाठक जी ने १९१३ ई० में अपने पिता के प्रति 'भक्तिविभा' नामक रचना में पुनः अपनी भक्ति और श्रद्धा को अभिव्यक्ति दी। इस रचना के प्रारंभ में पाठक जी ने स्वप्न में मस्तक पर तिलक लगाये हुए और गले में तुलसी की माला धारण किये हुए अपने पिता को देखा। पिता ने पुत्र को स्नेह से देखा, वात्सल्य से वह पुलकित थे। फिर वह गोपाल कीर्तन करते हुए बादलों के समूह में अदृश्य हो गये। इस रचना में इन सब स्थितियों का वर्णन है।

१९११ ई० में जार्ज पंचम और महारानी मेरी भारत आये थे और उनके सम्मान में दिल्ली में एक बड़ा.दरबार हुआ था। श्रीधर पाठक ने इस अवसर पर 'जार्ज वन्दना' की रचना प्रस्तुत की। पहले यह रचना स्वतंत्र रूप में प्रकाशित हुई थी और बाद में 'मनोविनोद' के तीसरे भाग में शामिल की गयी। ऐसा उस युग के कवियों की रचनाओं में देखा जा सकता है कि एक ओर वे राष्ट्रीय गौरव की भावना से प्रेरित थे, तो दूसरी ओर उन्होंने अंग्रेज़ी राज्य का स्वागत किया है। वस्तुतः उस समय तक इन कवियों के मन में अंग्रेज़ी शासकों से आशा बँधी हुई थी। पाठक जी सरकारी नौकरी में रहते हुए भी राष्ट्रीय भावना से प्रेरित और आंदोलित थे। इसी कारण १९१५ ई० में गोखले जैसे राष्ट्रवादी की मृत्यु पर उन्हें देश की हानि का अनुभव हुआ। उन्होंने संस्कृत में उनके व्यक्तित्व को लेकर 'श्री गोखले प्रशस्ति' लिखी। यह नौ श्लोकों में है। फिर हिन्दी में आठ छप्पय छंदों में 'श्री गोखले गुणाष्टक' की रचना की। निश्चय ही इन छंदों में गोखले के माध्यम से राष्ट्रीय भावना को अभिव्यक्ति मिली है।

हम कह चुके हैं कि अपने श्वास-रोग के कारण श्रीधर पाठक को स्थान परिवर्तन की दृष्टि से कई स्थानों और नगरों में जाना पड़ा था। इसी सिलसिले में पाठक जी देहरादून भी गये। स्वास्थ्य में विशेष सुधार तो नहीं हुआ, परंतु वह स्थान उन्हें आकर्षक लगा। वहाँ से रोग में विशेष लाभ न होने पर वह शिमला भी गये। पर वहाँ भी उन्हें कोई विशेष लाभ नहीं, हुआ अतः निराश होकर वह प्रयाग लौट आये। परंतु इस देहरादून की यात्रा का स्मरण पाठक जी को रहा और उन्होंने १९१५ में 'देहरादून' नामक रचना की, जिसमें यात्रा और देहरादून के अनेक प्रसंगों का वर्णन है। यह सचित्र प्रकाशित हुआ था। पाठक जी के परिवार में वैष्णव भक्ति का संस्कार परंपरा से चला आ रहा था। इस संस्कार की प्रेरणा से पाठक जी ने श्रीमद्भागवत के दशम् स्कंध के इकतीसवें अध्याय 'श्री गोपिका गीत' का समश्लोकीय अनुवाद किया। यह उन्नीस छंदों में वर्णित है और इसकी रचना १९१६ ई० में हुई। पाठक जी ने अनेक कविताएँ और गीत देशभक्ति और राष्ट्रप्रेम की प्रेरणा से रचे हैं। अनेक अवसरों और उत्सवों पर इन गीतों की रचना वे करते थे। उनकी ये रचनाएँ समय-समय पर अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती-रही थीं। १९२८ ई० में इन रचनाओं का संकलन 'भारत गीत' के नाम से गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ ने प्रकाशित किया। इसमें स्वदेश से संबंधित जातिप्रेम, देशप्रेम और स्वतंत्रता आदि भावनाओं पर अनेक रचनाएँ संगृहीत हैं।

पाठक जी ने काव्य की अपेक्षा गद्य में कम रचनाएँ की हैं। उन्होंने अपना संक्षिप्त जीवन परिचय लिखा है जो 'आराध्यशोकांजलि' में संकलित है। इसी प्रकार लखनऊ के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के अवसर पर उनका सभापति के पद से दिया गया भाषण महत्त्वपूर्ण है। पाठक जी ने १९१६ ई० में

'तिलस्माती मुंदरी' नामक एक तिलस्मी उपन्यास प्रकाशित किया। निश्चय ही यह कथा देवकीनंदन खत्री से प्रभावित है। पहले यह 'काशी पत्रिका' में १८८७-८८ ई० में प्रकाशित होनी शुरू हुई थी। पाठक जी ने समकालीन स्थितियों और समस्याओं पर भी अनेक निबंध लिखे हैं, जो 'हिन्दी प्रदीप', 'ब्राह्मण' आदि पत्रों में प्रकाशित होते रहे। इनमें कुछ गंभीर निबंध हैं लेकिन अधिकांश हास्य-व्यंग्य से पूर्ण मनोरंजन प्रधान हैं।

३

रचनाओं का मूल्यांकन

श्रीधर पाठक ने अनेक गीतों और कविताओं की रचना अपने विद्यार्थी जीवन से की है। ये कविताएँ और गीत राष्ट्रीय भावना से और जातीय गौरव की चेतना से रचे गये हैं। और यह क्रम उनके जीवन में आगे भी चलता रहा है। हम देख चुके हैं कि श्रीधर पाठक भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग को जोड़नेवाली कड़ी के रूप में रहे हैं। और उनकी कविताओं मे राष्ट्रीय चेतना के क्रमिक विकास को भी लक्षित किया जा सकता है। उनकी इस प्रकार की कविताओं का संग्रह 'भारत-गीत' है, जिसका उल्लेख हम कर चुके हैं। पाठक जी ने देश-प्रेम की भावना स्वाभिमान के साथ व्यक्त की है। उन्होंने उसके लिए एकता की भावना को आवश्यक माना है। मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' में अभिव्यक्त इस भाव— 'जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है। वह नर नहीं, नर पशु निरा है और मृतक समान है।' का आधार पाठक जी की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है—

वन्दनीय वह देश, जहाँ के देशी निज-अभिमानी हों।
बांधवता में बँधे, परस्पर परता के अज्ञानी हों।।
निन्दनीय वह देश जहाँ के देशी निज अज्ञानी हों।
सब प्रकार पर तंत्र पराई प्रभुता के अभिमानी हों।।

(स्मरणीय भाव)

वस्तुतः 'भारत गीत' में इन देशभक्तिपरक गीतों के साथ अगले संस्करणों में अन्य अनेक रचनाओं को संग्रहीत किया गया है। दूसरे संस्करण में 'भ्रमर-गीत' और 'चर-गीत' के साथ परिशिष्ट के रूप में 'विज्ञान-मंगल, 'सान्ध्य-अटन', 'आर्य-महिला', मजदूरनियों के योग्य देश-भक्ति के गीतों का संग्रह किया गया है। इन गीतों में मातृभूमि के प्रति प्रेम की अनेक रूपों में अभिव्यक्ति हुई है। वह उदार

हृदयवाली मातृभूमि को माँ के समान अपने सभी निवासियों के लिए सम-भाव रखनेवाली अंकित करते हैं। देश की सभी उपभोग्य वस्तुओं के लिए हर नागरिक के लिए उनका समान भाव है। अपने देश की संस्कृति के प्रति उनका गौरव भाव है।

इस गौरव भावना के साथ पाठक जी अपने देश की तत्कालीन शोचनीय और दयनीय परिस्थिति का वर्णन भी करते हैं। एक ओर कवि देश के प्राचीन गौरव का चित्र प्रस्तुत करता है, तो दूसरी ओर वर्तमान की शोचनीय स्थिति के वर्णन से पाठक के मन को उद्वेलित करता है। इस पद्धति से उत्थान-पतन के विरोधाभास से मन पर देशभक्ति का भाव अधिक गहरा जाता है। वह कहते हैं—

उन्नत-मन, अति उदार, साधन-धन-सिद्धि द्वार
जतन-रतन-निधि अपार, दीन दीनताऽरी
× × ×
कै यह कोई कमल-फूल, कोमल आनन्द मूल
धूल हेव रूस हूस, भौंर-भीर भारी।

(भारत-प्रशंसा)

ऐसा भारत देश जो अपनी सम्पन्नता और समृद्धि से दूसरे देशों को आकर्षित करता था और सहायता करता था, अब वर्तमान स्थिति में पतनशील हो गया है। पहले जिस देश में प्रेम, सभ्यता और विद्या का आदि निवास था और जहाँ सुख, वैभव और विक्रम सहज प्राप्त था, उस देश में—

उन्होंने लेकिन यह क्या किया।
किये पर एकदम चौंका दिया।।
सोमरस छांड़ द्रोह-मद पिया।
प्रेम का गला घोट विस दिया।।

(बिछुड़नेवाले यों बिछड़े)

इस प्रकार पाठक जी अपने देश की करुण कथा कहकर गौरव का स्मरण दिलाकर देश का उद्बोधन करते हैं।

अतीत के गौरव का स्मरण दिलाकर अपनी सभ्यता और संस्कृति के महत्त्व की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए बार-बार अपने जन-समाज का ध्यान वह देश की पराधीनता की ओर आकर्षित करते हैं। एक समय हमारा देश सम्पन्न और उन्नत था। आज वह अज्ञान और निष्क्रियता के अंधकार से घिरा हुआ है। कवि अपने देश की इस स्थिति से व्याकुल हो उठता है। उसका हृदय मार्मिक पीड़ा का अनुभव करता है। इसी भावना से वह पुनः अपने देशवासियों को जाग्रत करता

है, प्रेरणा और उत्साह की भावना अपने काव्य के माध्यम से भरने का प्रयत्न करता है—

भारत, चेतहुँ नींद निवारो
बीती निशा उदित भए दिनमनि-
कन को भयो सकारो।
× × ×
गहरी नींद परे मत सोवहु बात हमारी मानहु।

(भारतोत्थान)

अपने देश के प्रति कवि का गहरा अनुराग है। देश का कण-कण उसे प्रिय है। पाठक जी का भावशील हृदय अपनी मातृभूमि के प्रति कृतज्ञता का भाव अनेक प्रकार से अभिव्यक्त करता है। उसे जीवन का संदेश अपने देश के हर वन, पर्वत, नदी और झरने से मिलता है। अपनी प्रकृति के माध्यम से देश कवि के मन में मानवीय प्रेम का संदेश देता है। कवि अपने देश के प्रेम और सौंदर्य के भावों को अपनी वाणी में मुखरित करता है—

भारत हमारा कैसा सुन्दर सुहा रहा है।
शुचि भाल पै हिमाचल, चरणों पै सिन्धु अंचल
उर पर विशाल-सरिता-सित-हीर-हार-चंचल
मणि-बद्ध-नील-नभ का, विस्तीर्ण पट अचंचल
सारा सुदृश-वैभव मन को लुभा रहा है॥

(सुन्दर भारत)

इन गीतों में देश के प्रकृति दृश्यों के माध्यम से कवि हमको अपने महान् पुरुषों का स्मरण दिलाता है।

इसमें संग्रहीत 'चरगीत' के द्वारा कवि अपने देश के नवयुवकों को देशप्रेम की ओर उन्मुख करता है और अपने देश को उन्नत करने के व्रत का पाठ सिखाता है। निश्चय हीं नवयुवक ही किसी देश के भविष्य होते हैं। अतः यह गीत पाठक जी के देश-प्रेम का ही प्रतीक है। वह सम्बोधित करते हैं—

ए हो! नवयुव वर प्रिय छात्र वृन्द
भारत हृदि-नन्दन, आनन्दकन्द
× × ×
मन में अटल देश व्रत भर ले,
तन में अतुल तेज बल भर ले।

शुभ संकल्प प्रेमप्रण कर ले,
तज दे छल-छन्दे ।

(चरगीत)

इसी प्रकार उनके 'भ्रमर गीत' में देश-प्रेम ही व्यंजित हुआ है और इसी भाव को मजदूरनियों के गीतों में भी देखा जा सकता है।

पाठक जी अंग्रेजी के कवि गोल्डस्मिथ से बहुत प्रभावित थे। उसका मुख्य कारण है कि गोल्डस्मिथ रोमैण्टिक भावना के कवि हैं। उनकी रचनाओं में प्रेम, सौंदर्य और प्रकृति का वर्णन स्वच्छंद भाव-भूमि पर किया गया है। इस समान मानसिकता के कारण ही पाठक जी ने गोल्डस्मिथ के तीन खण्ड काव्यों का अनुवाद किया है। इनमें सबसे पहले उन्होंने 'दि हर्मिट' का अनुवाद 'एकान्तवासी योगी' के नाम से किया। इस काव्य में केंद्रीय आधार प्रेम की स्वच्छंद भावना का है। निश्चय ही इस प्रेम काव्य की वस्तु रचना और भावात्मक परिवेश को एक प्रेमकथा में संयोजित करने का श्रेय उसके मौलिक कवि को है, परंतु जैसा रामचंद्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी-साहित्य के इतिहास' में लिखा है कि इस कथा को अपनी भाषा में उसी सहजता और मार्मिकता से प्रस्तुत करने का श्रेय श्रीधर पाठक को है—

"सीधी-सादी खड़ी बोली में अनुवाद करने के लिए ऐसी प्रेम कहानी चुनना जिसकी मार्मिकता अपढ़ स्त्रियों तक के गीतों के मेल में हो, पंडितों की बँधी हुई रूढ़ि से बाहर निकलकर अनुभूति के स्वतंत्र क्षेत्र में जाने की प्रवृत्ति का द्योतक है।"

इस खण्ड-काव्य में एडविन और अंजलैना की प्रेम कथा है। इनके प्रेम में सहज मानवीय परिस्थितियों को अभिव्यक्ति मिली है। प्रेम की भावात्मक अभिव्यक्ति का यह रूप स्वच्छंद होने के कारण जीवन की मानवीय परिस्थिति से जुड़ा हुआ है। शास्त्रीय पद्धति पर रचे गये काव्यों में प्रेम का वातावरण परंपरित और रूढ़िबद्ध हो गया था। गोल्डस्मिथ ने अपने काव्य से प्रेम को जीवन से मुक्त स्तर पर प्रतिष्ठित किया है। इस कथा काव्य में पारिवारिक जीवन के भी सहज चित्र मिलेंगे। अंजलैना की माता नहीं है, पर पिता से उसे पूरा प्यार मिला है और वह अपने पिता को पूरा आदर और प्यार करती है। इन पात्रों में सहज मानवीय भावों की ऐसी अभिव्यक्ति हुई है जो देश काल की सीमाओं का अतिक्रमण कर सबके मन को स्पर्श करती है। ध्यान देने की बात है, इन दोनों के सहज प्रेम में भी शिष्टता और अनुशासन का अतिक्रमण नहीं हुआ है। पाठक जी ने इस काव्य को इसी कारण अपनी अभिव्यक्ति के लिए चुना है, क्योंकि प्रेम और सौंदर्य की रोमैण्टिक भावना को इन्हीं सीमाओं में वे स्वीकार करते हैं। उनको पिछले काव्य

की नायक-नायिकाओं का कृत्रिम और परम्परागत प्रेम रुचिकर नहीं है, क्योंकि उसमें जीवन का स्पन्दन नहीं होता। इसके स्थान पर उनको जीवन के सहज संबंधों में अभिव्यक्त होनेवाला प्रेम स्वीकार्य है, जो वैयक्तिक स्वतंत्र भावना में अभिव्यक्त होता है। यह प्रेम व्यापक मानवीय प्रेम से भी सम्बद्ध है।

इस काव्य के वैयक्तिक प्रेम में जीवन की सहजता का स्पर्श रहता है और साथ ही ऐसे नियंत्रण और ऐसी मर्यादाओं से मुक्ति का अनुभव भी रहता है, जो प्रेम के मानवीय संस्पर्श को कुण्ठित करती हैं। अंजलैना अपनी प्रेम की तन्मयता को इन शब्दों में व्यक्त करती है—

जाकर वहां जगत को मैं भी उसी भांति बिसराऊँगी।
देह गेह को देय तिलांजलि प्रिय से प्रीति निभाऊँगी।।

इसी प्रकार का भाव एडविन के इन शब्दों में व्यक्त होता है—

यद्यपि भिन्न शरीर हमारे हृदय प्राण मन एक।
परमेश्वर की अतुल कृपा से निभी हमारी टेक।।

यद्यपि यह पाठक जी की अपनी रचना नहीं है, पर उसके साथ उनका ऐसा तादात्म्य हुआ है कि पूरी रचना सहज जान पड़ती है। और मौलिक रचना के समान उसके प्रत्येक वर्णन में कवि रमा हुआ लगता है। यह वर्णन वस्तु-स्थितियों, परिस्थितियों और घटना-स्थलों के अपने सहज सौंदर्य और प्रभावशीलता में अंकित है—

टाइन नदी के रम्य तीर पर भूमि मनोहर हरियाली।
लटक रही, झुक रही जहां द्रुमलता, भूमि मनोहर हरियाली।।

यह एक प्रकृति का दृश्य है, जो वस्तु की पृष्ठभूमि है। इसी प्रकार पात्र भी उसी सहजता के साथ सामने प्रस्तुत होते हैं। अंजलैना अपनी बाल्यावस्था के बारे में कहती है—

मेरी बाल्यावस्था में ही माँ ने किया स्वर्ग प्रस्थान।
रही अकेली साथ पिता के, थी मैं उसकी जीवन प्राण।।

यह भी महत्त्व की बात है कि पाठक जी ने इस काव्य के अनुवाद में भारतीय संस्कृति के परिवेश को सुरक्षित रखा है, यद्यपि मूल भावनाओं की उन्होंने सदा रक्षा की है। इसका मुख्य कारण है कि पाठक जी गोल्डस्मिथ के साथ अपना भाव-तादात्म्य करने में समर्थ हुए हैं। कहीं कुछ स्थलों पर उनकी अभिव्यक्ति में भावों का उत्कर्ष हुआ है और संवेदना को गहराई मिली है। इस सफलता की सराहना

देश-विदेश में हुई थी। लंदन के 'दि होमवर्ड मेल' (२२ मई, १८८८ ई०) ने लिखा—

"गोल्डस्मिथ के 'हर्मिट' के हिन्दी अनुवाद (एकान्तवासी योगी) से हिन्दी साहित्य में एक अद्वितीय अभिवृद्धि हुई। यह भारतीय विद्वानों को क्लासिकल चित्र-कल्पना से विमुख कर मानवीय सहानुभूति में तल्लीन करेगा।"

इसी प्रकार पिनकॉट महोदय ने पाठक जी को लिखा था—

"आपका अनुवाद आपकी प्रतिभा की विजय है।"

तीन वर्ष बाद (१८८९) गोल्डस्मिथ की दूसरी रचना 'दि डिज़र्टेड विलेज' का अनुवाद 'ऊजड़ ग्राम' के नाम से प्रकाशित हुआ, जो एक करुण काव्य है। यह एक गाँव के विकास और पतन की भावव्यंजक कथा है। यह गाँव इंगलैंड का है, पर अपनी मानवीय परिस्थितियों और संवेदनाओं के अंकन की दृष्टि से यह हर देश और काल का है, जो मानवीय करुणा के आधार पर विश्व के स्तर पर उसे प्रतिष्ठित कर सका है। पाठक जी ने इस काव्य के अनुवाद के द्वारा हिन्दी पाठकों को जीवन के वैयक्तिक अनुभवों के माध्यम से व्यापक मानवतावादी दृष्टि से परिचित कराया। इस प्रकार यह रचना पाठक जी की रोमैण्टिक भावना के एक आयाम को अभिव्यक्ति दे सकी है। इस काव्य की रचना पाठक जी ने व्रजभाषा में की है और रोला छंद का प्रयोग किया है। व्रजभाषा के प्रयोग का एक कारण माना जा सकता है कि इस करुण कथा को संभवतः व्रजभाषा में अधिक मार्मिक अभिव्यक्ति मिल सकी हो। परन्तु स्वयं पाठक जी अपने गीतों के अतिरिक्त 'एकान्तवासी योगी' की रचना खड़ी बोली में कर चुके थे। और इन रचनाओं में खड़ी बोली सहज और मार्मिक अनुभवों को अभिव्यक्त करने में सफल हो चुकी थी। पाठक जी ने व्रजभाषा में रचना करने का एक रोचक कारण 'ऊजड़ गाँव' की भूमिका में दिया है—

"बूढ़ी व्रजभाषा का स्थान नवयुवती खड़ी बोली से सत्वर छीना जा रहा था और बहुत कुछ छीना जा चुका था।...अब भी अधिकांशतः वही प्रवृत्ति है। अतः बूढ़ी भाषा की रचना एक उजड़े हुए गाँव की दशा को इतना शीघ्र प्राप्त हो जाना अस्वाभाविक न था।"

(तृतीय संस्करण की भूमिका से)

अतः यह रुचि का प्रश्न अधिक रहा है। इस अनुवाद में शब्दशः मूल का अनुसरण न कर भावों की अभिव्यक्ति पर विशेष ध्यान रखा गया है।

पाठक जी ने भावों को पूरी तरह व्यक्त करने के लिए कहीं-कहीं मूल को किंचित् विस्तार दिया है। इसीलिए मूल रचना जहाँ ४३० पंक्तियों की है, अनुवाद ५१४ पंक्तियों में किया गया है। एक-दो उदाहरणों से यह भलीभाँति देखा जा सकता है कि पाठक जी गोल्डस्मिथ की भावनाओं की और उनकी मौलिकता की

रक्षा करते हैं।

Where smiling spring its earliest visit
And parting summer's lingering blooms delayed.

वह उक्त का अनुवाद निम्नलिखित पंक्तियों में प्रस्तुत करते हैं—

जहाँ रसीली ऋतु वसन्त पहले ही आवत।
जाय समय बिलमाय फूल फल देर लगावत॥

यहाँ यह अनुवाद शाब्दिक न होकर भी कवि के भाव को पूरी तरह व्यक्त करने में समर्थ है। यहाँ 'Smiling' के लिए 'रसीली' और 'Lingering' के लिए 'बिलमाय' न केवल पूरे अर्थ संदर्भ को व्यक्त करने में समर्थ है, वरन हिन्दी की काव्य-परम्परा के भी अनुकूल है। इसी प्रकार निम्नलिखित मूल पंक्तियों को अनुवाद की पंक्तियों के साथ रखकर देखा जा सकता है—

Frinces and Lords may flourish or may fade
A breath can make them as a breath has made,
But a bold peasantry, their country's pride
When once destroyed can never be supplied.

(The Deserted Village, 53-56)

कुमर और उमराय वने बिगरें कछु नाहीं,
फूँक माँहि वे बनत फूँक ही सों मिट जाहीं।
पै दृढ़ कृषिक-समाज देस को साँचो गौरव,
नास भये एक बार फेरि उपजन नहिं सम्भव।

(ऊजड़ ग्राम, पंक्ति ७२-७५)

यहाँ बड़ा ही सहज और दोनों देशों की परम्पराओं का निर्वाह करते हुए अनुवाद किया गया है। इंगलैण्ड के 'Princes' और 'Lords भारतीय 'कुँवर' और 'उमराव' में ठीक वही अर्थ व्यक्त करते हैं। ठीक इसी तरह 'Flourish' और 'Fade' का बहुत ही सहज क्रियाओं में अर्थात् 'बने' और 'बिगरे' में अनुवाद किया गया है। 'फूँक' का प्रयोग भी यहाँ व्यंजक और सटीक हुआ है। इसी तरह अगली पंक्तियों में भी मूल का भाव पूरी तरह रक्षित है। भाव का जो अंतर लक्षित किया जा सकता है, वह अपनी परम्पराओं का अंतर भी है।

कहा गया है कि गोल्डस्मिथ ने अपनी इस रचना में इंगलैण्ड के एक ग्राम के आधार पर व्यापक मानवीय जीवन के संदर्भों को अभिव्यक्ति दी है। पाठक जी ने कवि की इस मूल भावना के आधार पर इस रचना को भारतीय संस्कार से सम्बद्ध

किया है। इस रचना के 'पुजारी' और 'अध्यापक' जैसे पात्र भी अनुवाद में भारतीय संदर्भ ग्रहण कर लेते हैं। इसी प्रकार गाँव की कुमारियों की हित चिंता में लगे हुए गुरुजनों को देखा जा सकता है। इन चित्रों में हमारे गाँवों का स्वाभाविक चित्र उपस्थित हुआ है—

सकुचीली क्वारिन की पुरुषन पै बगलौंही,
महतारिन करिकैं तिनकों आँखिन में तरजनि। (३९-४० पंक्तियाँ)

इसी प्रकार एक दूसरा चित्र है—

सरल सलोनी सुन्दर साधारन हिय भोरी,
चूमि पियाला पहुँचइहै औरन की ओरी। (३६१-६२)

इन दोनों वस्तुस्थितियों के वर्णन में रोमैण्टिक भाव के साथ ग्रामीण जीवन का मुक्त वातावरण देखा जा सकता है। इस प्रकार गोल्डस्मिथ के इस काव्य के अनुवाद में पाठक जी बहुत दूर तक सफल हो सके हैं। यहाँ इस बात का उल्लेख करना रोचक है कि पाठक जी ने अपनी 'स्वजीवनी' में अपनी जन्मभूमि 'जोंधरी' के ह्रास का अंकन इसी प्रकार किया है। सच तो यह है कि भारतीय परिवेश में अपने वैभव और अपनी सम्पन्नता से पतन और विपन्नता की ओर जाते हुए अनेक ग्रामों को देखा जा सकता है। इस परिवेश में पाठक जी के लिए 'ऊजड़ ग्राम' जैसी कृति का अनुवाद करना सहज हो गया, क्योंकि वह उनकी भावना को भी अभिव्यक्त करती है।

इस क्रम में पाठक जी ने गोल्डस्मिथ के 'दि ट्रेवलर' का अनुवाद 'श्रान्त पथिक' के नाम से १९०२ ई० में प्रस्तुत किया। यह रचना अंग्रेजी के रोमैण्टिक युग की मूल प्रवृत्तियों को अभिव्यक्ति दे सकी है। हम कह चुके हैं कि भारतेन्दु युग से ही पाठक जी परम्परा और रीतियों से मुक्त होकर स्वच्छन्द भाव-भूमि पर अपने रचना-कर्म को अग्रसर कर रहे थे। निश्चय ही यह काव्य पिछले दोनों खण्ड काव्यों के समान स्वच्छन्द भावना को और व्यक्तिगत अनुभवों को अभिव्यक्ति नहीं दे सका है। इस काव्य में विचार और दर्शन का पक्ष उसे अपेक्षाकृत कम भावशील रूप में प्रस्तुत करता है। इस काव्य में प्रेम, सौंदर्य, करुणा और विषाद के पिछले चित्र नहीं हैं। इसमें मूल प्रश्न है कि मनुष्य को सुख की प्राप्ति कैसे होती है। और इसके लिए कवि ने विभिन्न देशों के राष्ट्रीय जीवन के साथ इस प्रश्न को रखकर विवेचित करना चाहा है। परिणामस्वरूप विविध प्रश्नों और विचारों के प्रस्तुत हो जाने से काव्य में भावशीलता की कमी आ गयी है। कविता में दार्शनिक पक्ष प्रायः उसे नीरस बना देता है और अनुवाद में यह कमी और भी अखरती है।

गोल्डस्मिथ पथिक के रूप में काव्य में अपने को प्रस्तुत करते हैं। आल्प्स पर्वत

के शिखर पर आत्म-सुख प्राप्त करने की खोज में कवि मानवीय सुख पर विचार करता है। हर देशवासी अपने देश को ही सर्वश्रेष्ठ मानता है और विभिन्न देशों के समाजों पर विचार करने पर उसे लगता है कि संघर्ष का कारण संकीर्ण राष्ट्रीयता है। विभिन्न देशों के समाज सुख पाने के लिए दूसरों के दुःख के कारण बनते हैं। इस प्रकार सुख कहीं नहीं है, सच्चे अर्थ में किसी को प्राप्त नहीं है। सारे ऊहापोह के बाद कवि मानता है कि मनुष्य का सच्चा सुख उसके अन्दर है। स्मरणीय है कि गोल्डस्मिथ अपने जीवन में भटकता रहा था। वह अनेक ऐसी परिस्थितियों में पड़ा है, जिसमें उसे दुःख का अनुभव हुआ है। वह सुख की कामना से उत्सुक हो उठता है, पर वह अनुभव करता है कि इस जीवन के संघर्ष में सुख नहीं है। इस रचना के दो अंश अधिक काव्यमय हैं। ये अंश प्रारम्भ और अंत के हैं जिनमें कवि ने दुःख और करुणा की अनुभूति को सघनता से अभिव्यक्ति दी है। अंग्रेज़ी के कवि ग्रे तथा कॉलिन्स का प्रभाव इस रचना के दुःखवाद में देखा जा सकता है—

दूर देश, बिन मित्र, मलिन मन, मन्द निरन्तर पथ चारी,
चाहे शिथिल शैल तट चाहे कुटिल भ्रान्त पो अनुसारी।
अथवा आगे और जहाँ शठ 'कैरिनथी' कृषिकार गँवार,
परदेशी को देख बन्द कर लेता अपने घर के द्वार।

(१ से ४)

इन पंक्तियों में और इसी प्रकार आगे की पंक्तियों में कवि अपने मन के एकाकीपन को अनेक संदर्भों से जोड़कर दुःखी और खिन्न पाता है। वह स्वजन और मित्रों से अलग होकर भटकता फिरता है, पर कहीं उसे आश्रय और सान्त्वना नहीं मिली। इस प्रकार जिन स्थलों पर भावाभिव्यक्ति के लिए अवसर है, वहाँ अनुवाद सफल हो सका है। परन्तु जहाँ विचार और चिन्तन की प्रधानता है, उन स्थलों पर अनुवाद प्रभावी नहीं बन पड़ा है। उसका एक कारण यह भी है कि इस रचना के अनुवाद में पाठक जी का शाब्दिक अनुवाद का प्रयत्न अधिक है।

अनुवाद की कठिनाइयों और कमियों के बावजूद यह अनुवाद महत्त्व रखता है। इसमें मूल रचना की केन्द्रीय भावना को सुरक्षित रखा जा सका है और साथ ही कवि के चिन्तन और ऊहापोह को उसके सारे सन्दर्भों के साथ व्यक्त किया जा सका। इस काव्य के द्वारा गोल्डस्मिथ का यह मूल विचार स्पष्ट हो सका है कि मनुष्य अपने सुख की खोज अपने अन्दर ही कर सकता है। वह विभिन्न देशों के राष्ट्रीय सन्दर्भ की सुख की कल्पना को सत्य नहीं स्वीकारता, वरन् सुख को मानवीय सन्दर्भ में ही स्वीकार करता है। जहाँ मनुष्य सीमाओं से बँधता है, वहाँ उसका सुख खंडित होता है। हर देश के इतिहास से इसका प्रमाण दिया जा सकता है। इस रचना के माध्यम से मानवीय नैतिकता का नया दृष्टिकोण हिन्दी पाठकों

के सम्मुख पाठक जी ने रखा और अपने आप में यह स्वच्छन्द दृष्टि का एक पक्ष है।

पाठक जी की बाल्यावस्था की रचनाओं का एक संग्रह **'मनोविनोद'** १८९२ ई० में प्रकाशित हुआ था। बाद के संस्करण में भारतेन्दु युग से लेकर द्विवेदी युग तक फैले हुए कवि के रचना काल की कविताएँ हैं। 'भारत-गीत' के समान इस संग्रह की कविताएँ युग की अनेक भावनाओं, आन्दोलनों तथा प्रवृत्तियों पर रची गयी हैं। कुछ रचनाएँ राजभक्तिपरक हैं, जैसे 'विक्टोरिया', 'विक्टोरिया चिरजीवी', 'लार्ड रिपन' और 'ग्राउस साहब' जैसी रचनाएँ। उस समय के कई रचनाकारों में इस प्रकार का प्रत्यक्षतः प्रतीत होनेवाला विरोधाभास पाया जाता है। उसका एक कारण क्रमशः विकसित होती राष्ट्रीय चेतना के साथ अंग्रेज़ी राज्य-व्यवस्था की अपेक्षाकृत सुस्थिर शासन-व्यवस्था थी। इस व्यवस्था में अराजक तत्त्वों को दबाया जा सका था। पाठक जी स्वयं राजकीय सेवा के अंग भी थे। ध्यान देने की बात है कि अन्य कविताओं की तुलना में राजभक्ति की रचनाएँ इनी-गिनी हैं।

इस संकलन में राष्ट्रीय भावना को अभिव्यक्त करनेवाली देश-भक्ति की कविताएँ हैं। कांग्रेस की स्थापना के साथ देश में जाग्रति आई और राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ। इस भावना को मुखरित करनेवाले गीतों के संकलन (भारत-गीत) की चर्चा की जा चुकी है। इस संग्रह में कई कविताएँ इस भावाभिव्यक्ति के साथ देश के गौरव को मुखरित करती हैं। इनमें 'भारत श्री', 'भारत-प्रशंसा', 'हिन्द-वन्दना', 'भारत-सुत' और 'भारत गगन' प्रमुख हैं। पाठक जी का प्रकृति-प्रेम उनके देश-प्रेम का एकरूप भी है—

'उत्तर दिशि नगराज' अटल छवि सहित विराजत।
लसत स्वेत सिर मुकुट झलक-हिम-शोभा भ्राजत।।

× × ×

प्रकृति - परम चातुर्य अनुपम अचरज - आलय।
श्रीधर-दृग छवि रहत 'अटल छवि' निरखि हिमालय।। (हिमालय)

उन्होंने हिमालय के सौंदर्य और उसके प्रति अपने प्रेम को अपनी एक अंग्रेज़ी कविता 'The Cloudy Himalayas' में अभिव्यक्त किया है।

रोमैण्टिक भावना में प्रकृति का प्रेम और आकर्षण एक प्रमुख पक्ष है। श्रीधर पाठक की अनेक कविताओं में यह प्रकृति-प्रेम व्यंजित हुआ। इन कविताओं में प्रकृति का सौंदर्य-चित्रण संस्कृत कवियों के संश्लिष्ट वर्णन के आधार पर है और वैयक्तिक प्रेम-व्यंजना रोमैण्टिक कवियों के समान है। सरल आत्मीयता का भाव इन वर्णनों की विशेषता है। इस संकलन में इस कोटि की कविताओं में 'शिमला

प्रेक्षणम्', 'भ्रमराष्टक', 'घनाष्टक', 'वनाष्टक', 'घन-विनय', 'शरद समागत स्वागत', 'गुनवंत हेमंत', 'नव वसंत', 'वसंत', 'वसंतागमन' आदि महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने कालिदास के 'ऋतुसंहार' के आधार पर ऋतुओं का वर्णन भी किया है, जो वातावरण के जीवंत चित्र हैं। राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होने के कारण उनके प्रकृति के दृश्यों में यह भावना व्यंजित हुई है—

तुम भारत के धन जन-गुन गौरव आधार।
तुम ही तन, तुम ही मन, तुम प्रानन-पतवार ।।

(मनोविनोद : **वनाष्टक**)

इस वनश्री के वर्णन में राष्ट्र-प्रेम झलकता है। उनके प्रकृति चित्र सहज दृश्य उपस्थित करते हैं। पाठक जी कालिदास के 'ऋतुसंहार' का संपूर्ण अनुवाद करना चाहते थे, पर ग्रीष्म, वर्षा और शरद का ही कर सके, फिर भी अपने अनुवाद में मूल के काव्य-सौंदर्य तथा भावना को अभिव्यक्त कर सके हैं। यहाँ 'फूलन भार सों डार झुकीं। मृदु, स्यामलता अति लागत प्यारी' जैसे चित्र संस्कृत काव्यों की संश्लिष्ट योजना और उसमें व्यंजित भावना के समकक्ष है।

पाठक जी परंपरा के मूल्यवान् पक्ष को स्वीकार कर उसके रूढ़िवादी रूप को त्यागने के पक्ष में रहे हैं। समाज में नारी का स्थान निम्नतर होता गया था। युगों से वह अपमानित और उपेक्षित रही थी। वह नारी को समाज में सम्मान और उचित स्थान दिलाना चाहते थे। उनके मन में नारी का गौरवपूर्ण अतीत है—

सात्विकी-वृत्ति-गुन-मंजु मंजूपिके,
आर्य-मर्यादा आधार भूते।
सुखद-संसार-व्यवहार-पटु पण्डिते,
सुभग - संस्कार - आचार पूते ।।

(वही : 'आर्य सुंदरी')

उनके मन में ग्लानि का भाव है कि ऐमी सम्माननीया और गौरवशालिनी नारी को समाज का अन्याय सहना पड़ा है। उसने सब कुछ सहा है। पाठक जी अपने देश और समाज में नारी को उचित स्थान देने के लिए उद्बोधित करते हैं—

आरति-हरनि-हार भारत, निज-नाम सकल किन कीजै।
वेगि उबारि निबल अबलागन, सुजस-सुधा-रस पीजै ।।

(वही : **निबल अबला**)

इस संग्रह में 'बाल-विलास' सम्मिलित है, जिसमें अनेक पक्षियों पर बालकों के लिए मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद कविताएँ हैं। चकोर पर लिखी कविता में

रोचकता और शिक्षा दोनों के भाव देखे जा सकते हैं—

धन-धन सुगढ़ चकोर, तू खगकुल-आगरिया।
पालै नियम कठोर, कि वंश उजागरिया।
चन्द तेरा चितचोर तू उस पर बावरिया।
लख-लख उसकी ओर कि होय निछावरिया।। (चकोर)

इन कविताओं की सरल भाव-व्यंजना और सरल शब्द-योजना आकर्षक है। इस संग्रह में उनकी अंग्रेज़ी कविताएँ भी हैं। ये कविताएँ प्रकृति-सौंदर्य, राष्ट्रीय जागरण, राष्ट्र गौरव जैसी भावनाओं को व्यंजित करती हैं। इस प्रकार यह काव्य संग्रह पाठकजी की काव्य प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। ये प्रवृत्तियाँ मुख्यतः उनके स्वच्छंद व्यक्तित्व को प्रकट करती हैं। इसमें संकलित कविताओं में जैसा उल्लेख किया गया है राष्ट्रचेतना, देशभक्ति, सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा और प्रकृति-प्रेम के विविध रूपों को अभिव्यक्ति मिली है। अतः 'मनोविनोद' पाठक जी की प्रतिनिधि रचना मानी जा सकती है।

पाठकजी ने 'जगत सचाई सार' की रचना अपने देश और समाज को कर्म के मार्ग पर प्रवृत्त करने के लिए की है। उन्होंने इसके दूसरे संस्करण की भूमिका में अपने इस विचार को प्रकट भी किया है—

"जगत को मिथ्या मानकर अकर्मण्यता की गहरी नींद में निमग्न कदाचित् एक ही देश इस भूतल पर है। और वह भारतवर्ष है। उसके सुतों को संसार के मिथ्यात्व का घूंट अपनी माँ के दूध के साथ ही मिलता है। राजा से रंक तक प्रायः प्रत्येक व्यक्ति इस माया-मानवी के स्व-विस्मारक क्रोड़ में दोलायमान है।"

अपने देशवासियों को इसी निष्क्रियता से उद्बुद्ध कर कर्म के मार्ग पर प्रेरित करने के लिए उन्होंने यह रचना की है। जिस प्रकार कृष्ण ने कर्म पथ से विचलित अर्जुन को कर्म का मार्ग अपनी गीता में दिखलाया है, उसी प्रकार 'जगत सचाई सार' में पाठकजी ने अपने देशवासियों को कर्म के लिए प्रेरित किया। कृष्ण ने कहा था कि कर्म करना ही मनुष्य के अधिकार की बात है और वह कर्म के लिए नियुक्त है। इसी भाव को व्यक्त करने के लिए पाठकजी ने पहले हमारी इस भावना को दूर करने का प्रयत्न किया है कि यह संसार मिथ्या है।

'जगत सचाई सार' वस्तुतः इस रचना का मूल मंत्र है। कवि की इस भावना को अंग्रेज़ी कवि लांगफ़ेलो की 'अ सांग ऑफ़ लाइफ़' नामक कविता में देखा जा सकता है। लांगफ़ेलो ने अपनी कविता में कहा है—

Tell me not in mournful numbers,
Life is but an empty dream.

इसी भाव को पाठक जी ने इस प्रकार रखा है—

कहो न प्यारे मुझसे ऐसा, झूठा है यह सब संसार,
थोड़ा झगड़ा जी का रगड़ा, केवल दुःख का हेतु अपार।

पाठक जी ने ईश्वरीय सृष्टि को सत्य ही माना है, और संसार के सभी पदार्थों से मनुष्य का गहरा संबंध देखा है। इस कारण यह जगत् झूठ और निस्सार कैसे हो सकता है? आगे लांगफ़ेलो ने जीवन की सत्यता और महत्ता को प्रतिपादित किया है। उसी तरह पाठक जी ने भी जगत् को सच्चा मानकर उसके उपभोग और अनुभव को भी महत्त्वपूर्ण माना है। प्रत्यक्षतः संसार की सभी वस्तुएं बदलती रहती हैं और इस प्रकार हम उनको नष्ट होते देखते हैं। परंतु हमारे जीवन से उनका सम्बन्ध है और उसके लिए इनका महत्त्व भी। कायर मनुष्य ही वस्तुओं को नश्वर मानकर कर्म से पलायन करता है। ईश्वर की यह सृष्टि है, अतः उसे असत्य या भ्रम कैसे माना जाएगा। इसीलिए हर वस्तु में हमारा विश्वास अपेक्षित है—

रचा उसी का है जब यह जग निश्चय उसको प्यारा है,
इसमें दोष लगाना अपने लिए दोष का द्वारा है।

कवि ईश्वरीय सृष्टि में उसके विधान और उसके ऐश्वर्य को अभिव्यक्त देखता है। इस ईश्वर की लीला अद्भुत है, अपूर्व सुन्दर और चमत्कारी है। इन दृश्यों में सुन्दरता के साथ विविधता भी है। ऐसी स्थिति में इस संसार को असार मानकर कर्म से विरत होना कायरता है और ईश्वर की इच्छा के प्रतिकूल है। कवि मनुष्य को कर्त्तव्य के मार्ग पर चल कर जीवन निर्माण करने का उपदेश देता है। क्योंकि—

चलोगे सच्चे मन से जो तुम निर्मम नियमों के अनुसार,
तो अवश्य प्यारे जानोगे सारा जगत सचाई सार।

वस्तुतः लांगफ़ेलो भी इसी प्रकार मनुष्य को कर्मक्षेत्र में आगे बढ़ने को कहता है। उनके अनुसार—"हमारा निश्चित मार्ग या गन्तव्य न तो सुख मनाना है और न दुःख, वरन् इस प्रकार कर्म में लगे रहना है कि प्रत्येक प्रातः हम पहले से आगे बढ़े हुए अपने को पाएँ।"

इस कविता में पाठकजी की स्वच्छन्द भावना को देखा जा सकता है। यह दृष्टि जगत् को यथार्थ रूप में स्वीकार करती है और संसार को मुक्तभाव से देखने का आग्रह करती है। इसी दृष्टि के अनुसार पाठकजी प्रकृति में जीवन के सत्य को देखते हैं। जीवन पर विश्वास करना और उसके प्राकृतिक नियमों का पालन

करना ऐसा ही एक आदर्श है, जिसे कवि ने यहाँ प्रतिपादित किया है। इस पर आस्था रखकर कर्म क्षेत्र में आगे बढ़ते चलना कवि का रोमैण्टिक दर्शन माना जा सकता है। इस रचना में लोक छन्द लावनी का उपयोग किया गया है और सरल खड़ीबोली में प्रस्तुत की गयी है। इसमें भाषा और छन्द आदि के दोष यत्र-तत्र अवश्य खटकते हैं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस रचना के बारे में लिखा है—

> "पंडितजी ने इस पुस्तक में नैसर्गिक शोभा का वर्णन बहुत ही सरलता से किया है। पद्यों में तर्क और बुद्धिवाद करना बहुधा अंग्रेज़ी कविताओं में पाया जाता है (बायरन की कविता इस बात के लिए प्रसिद्ध है)। यही ढंग इस छोटी-सी पुस्तक में भी कहीं-कहीं पाया जाता है। इस देश के कई कवि निरर्थक शब्दों के आडम्बर में और अतिशयोक्ति के काल्पनिक उलझाव में ही अपनी सब बुद्धि खर्च कर देते हैं। पर आनन्द की वार्ता है कि अब उनके लिए पंठित जी ने एक नये ढंग की कविता दी है।"

हम कह चुके हैं कि प्रकृति सौंदर्य के प्रति पाठक जी का आकर्षण स्वच्छन्द मनोभाव से प्रेरित रहा है। वह उन कवियों में रहे हैं जिन्होंने भारतेन्दु युग से प्रकृति को रीतिकाल की मनोवृत्ति से मुक्त किया। संस्कृत काव्य-परम्परा में वाल्मीकि, कालिदास और भवभूति आदि कवियों ने प्रकृति के सौंदर्य का संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किया है और उसे मानवीय चेतना और भावों से अनुप्राणित भी किया है। हम कह चुके हैं कि भारतेन्दु युग में ठाकुर जगमोहन सिंह ने इस परंपरा का सुन्दर निर्वाह किया है। इस दृष्टि से पाठकजी का प्रकृति के प्रति आकर्षण अपना अलग महत्त्व रखता है। वह एक ओर प्रकृति के सौंदर्य को प्रस्तुत करते हैं, तो साथ ही उसे मानवीय जीवन से अनुप्राणित भी करते हैं। हम उनके अन्य संकलनों में आयी हुई ऐसी रचनाओं का उल्लेख कर चुके हैं, पर 'कश्मीर सुषमा' इस दृष्टि से अपना विशेष महत्त्व रखती है। कश्मीर के सौंदर्य का उल्लेख सभी करते हैं। उसकी सुन्दर पर्वतश्रेणियाँ, विस्तार में फैली हुई झीलें, बर्फ़ से ढँकी हुई चोटियाँ और घाटियों में वक्र प्रवाहित नदियाँ अपने सौंदर्य से मन को अभिभूत करती हैं। यह सौंदर्य अनेक रूपाकार ग्रहण करता रहता है। इसी सौंदर्य को श्रीधर पाठक ने कश्मीर की यात्रा के बीच अनेक स्थानों पर देखा और अनुभव किया। कश्मीर के अपूर्व सौंदर्य से प्रभावित होकर पाठक जी ने इस पूर्व कथन को उल्लसित मन से स्वीकार किया है—

यहीं स्वर्ग सुरलोक यहीं सुर कानन सुन्दर
यहिं अमरन को ओक, यहीं कहुँ बसत पुरन्दर।

कवि के अनुसार कश्मीर के नैसर्गिक सौंदर्य का आँखों से मात्र देखने से भली

प्रकार अनुभव नहीं किया जा सकता। उसका अनुभव विशेष दृष्टि से ही संभव है। इस सौंदर्य के सामने कवि अपने को विवश पाता है, पर उसकी कल्पना विराम नहीं लेती, वह निरंतर उस सौंदर्य को ग्रहण करने में संलग्न है। कवि के अनुसार—

प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति।
पल-पल पलटति भेस छनिक छवि, छिन-छिन धारति।
विमल अंबु-सर-मुकुरन-महँ मुख बिंब निहारति।
अपनी छवि पै मोहि आप ही तन-मन वारति।।

इस सौंदर्य में कवि की मनःस्थितियों का अन्तर्भाव भी है। कवि प्रकृति की कल्पना एक मानवी के रूप में करता है और इस प्रकृति रूपी मानवी के भावों को सुन्दर दृश्यों के साथ व्यंजित करता है। इस प्रकार की अनेक क्रियाओं के प्रयोग से—"सजति, सजावति, सरसति, हरसति, धरसति, प्यारी' कवि प्रकृति सौंदर्य के सजीव रूप को अनेक भंगिमाओं में ग्रहण करता है। इसी प्रकार अन्य क्रियाओं के माध्यम से प्रकृति सौंदर्य के हाव-भाव का मार्मिक अंकन करता है—

विहरति विविध - विलास-भरी जोवन के मद सनि
ललकति, किलकति, पुलकति, निरखति, थिरकति, बनि-ठनि।
मधुर मंजु छवि पुंज छटा छिटकति वन-कुंजन
चितवति, रिझवति, हँसति, डंसति, मुस्क्याति, हरति-मन।

इस रचना में अनेक स्थानों के संदर्भ में सौंदर्य का अंकन किया गया है। एक ओर श्रीनगर की झीलें डल, बूलर, गन्धर्वल और गगरीबल अपने विस्तार में घाटियों के बीच लहरा रहीं है। दूसरी ओर अनेक पर्वतीय स्थान और शिखर, शंकराचार्य, अमरनाथ, मार्तण्ड, खीर भवानी आदि अपना सौंदर्य बिखेर रहे हैं। इस सौंदर्य के बीच कवि अपनी निजी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देता है—'प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति', और यह सौंदर्य हर क्षण नये-नये रूपों में लक्षित होता है—'पल-पल पलटति भेस छनिक छवि छिन-छिन धारति। इन वर्णनों को कवि ने अलंकार विधान से अधिक चमत्कृत बनाया है। परन्तु इन सौंदर्य चित्रों में भावों की सरलता और माधुर्य है। यत्र-तत्र पाठकजी ने इस रचना में व्यक्तिगत संदर्भ भी दिये हैं। और डोगरा राज्यवंश का स्मरण भी किया गया है।

कहा गया है कि पाठकजी का अपने पिता के प्रति श्रद्धा भाव अटूट था। यद्यपि वह स्वयं आधुनिक युग के विचारों से प्रेरित थे और उनके पिता लीलाधर परम्पराओं पर श्रद्धा रखनेवाले व्यक्ति थे। उनकी यह श्रद्धा दो रचनाओं में

अभिव्यक्त हुई है। अपने पिताजी की मृत्यु पर उन्होंने १९०६ में 'आराध्य शोकांजलि' जैसे शोक काव्य की रचना की और आगे चलकर १९१३ में **'भक्ति-विभा'** नामक रचना पूज्य पिता को लक्ष्य करके ही रची है। शोक काव्य में वैयक्तिक संदर्भों की ही प्रधानता रहती है। पाठक जी की इस रचना में आत्मीयता का गहरा अनुभव अभिव्यक्त हुआ है। इस प्रकार के निधन से परिवार का असहाय अनुभव करना स्वाभाविक ही है। पाठकजी का हृदय भी शोकाकुल हो उठा। जैसा उल्लेख किया गया है, यह रचना संस्कृत में की गयी है। कवि अपने पिता के गुणों का उल्लेख करते हुए उनके जीवन का आदर्श प्रस्तुत करता है। उन्होंने अपने इस विश्वास को व्यक्त किया है कि उनके पिता ने सच्चे भक्त होने के कारण सद्गति प्राप्त की है। भगवान् अपने भक्त को अपनी शरण में लेते ही हैं। इस शोक काव्य में पाठक जी ने अपनी वंश परंपरा का उल्लेख भी किया है। शास्त्रीय आधार के बावजूद कवि ने अपनी निजी भावना के आधार पर इस रचना को अकृत्रिम और आडम्बरहीन रूप में प्रस्तुत किया है।

कई वर्षों बाद, १९१३ ई० में, उन्होंने 'भक्ति विभा' नामक रचना में पुन: अपने पिता का स्मरण आन्तरिक भाव से किया था। इस रचना में पाठक जी स्वप्न में अपने पिता को देखते हैं और उनको अपने समक्ष जीवित पाकर स्तुति करने लगते हैं। इस स्तवन से पाठक जी का हृदय नैसर्गिक भावना का अनुभव करता है और वह सारी चिन्ताओं से मुक्त हो जाते हैं। रात के समय कवि को अपने पिता के दर्शन होते हैं और वे उनके सामने पूर्ववत् प्रकट होते हैं। पिता का यह सुन्दर रूप वर्णन है—

सोई सुठि आकृति सोई सुघर गात
सुस्मित सुचि आनन आभा लखात
चन्दन भल चर्चित वर तिलक भाल
सुललित मन्दार-कुसुम-तुलसि माल
सोई पद-पानि जुगल वारिजात
सात्विक द्युति पार्थिव-श्रीयुत सुहात। (पंक्ति ३—८)

इस वर्णन में पिता का व्यक्तित्व और भक्ति-भावना की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति हुई है। उनके पिता सदा पूजा-अर्चना में लगे रहनेवाले व्यक्ति थे! आगे उनके पिता अपने पुत्र को जिस ममता की दृष्टि से देखते हैं, वह मार्मिक है। उनके पिता अपना मन पुन: अपने आराध्य में लगाते हैं और कवि का हृदय उनको इस रूप में देखकर प्रेमासक्त हो जाता है। जब वह उत्फुल्ल और आह्लादित होकर पिता के दर्शन में लीन थे, उनके पिता 'घन पटल' में अदृश्य हो जाते हैं। इस स्थिति में पाठक जी का चित्त निराश होने लगता है। तभी बादल का वह आवरण हट जाता

है। कवि का हृदय आश्वस्त होता है, परन्तु यह सौभाग्य पुनः पिता के बादलों में अदृश्य हो जाने के कारण समाप्त हो जाता है।

इन दोनों काव्य ग्रंथों में पाठक जी का अपने पिता के प्रति प्रेम अभिव्यक्त हुआ है। मुख्य बात है कि इन रचनाओं में श्रद्धा और भक्ति का रूप अनेक स्तरों और रंगों में इस प्रकार व्यंजित होता है कि कवि की स्वच्छंद भावना उससे भी पुष्ट होती दिखाई पड़ती है। यद्यपि पिता का व्यक्तित्व एक परम्परित भक्त का है, पर कवि अपने पिता के प्रति अपने आत्मीय स्तर के स्नेह सम्बन्ध को अनेक पक्षों से अभिव्यक्त करता है। 'भक्ति विभा' में कवि स्वप्न में प्रकट हुए पिता के प्रति अपने हृदय के उल्लास को बहुत मार्मिकता के साथ प्रकट कर सका है और यही इस काव्य की विशेषता है।

पाठक जी राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित कवि हैं। इस दृष्टि से गोपालकृष्ण गोखले जैसे देश के नेता के प्रति उनका आकर्षण स्वाभाविक था। गोखले को लेकर उन्होंने तीन रचनाएँ प्रस्तुत की हैं—

१. हा, गोखले
२. श्री गोखले प्रशस्ति
३. श्री गोखले गुणाष्टक।

'श्री गोखले प्रशस्ति' देश के नेता गोखले के व्यक्तित्व का अभिनन्दन है। गोखले ने राष्ट्र की चेतना को विकसित करने में अपना महत्त्वपूर्ण योग दिया। उन्होंने गाँधी जी के नेतृत्व के पूर्व ही देश की हरिजन समस्या की ओर ध्यान आकर्षित किया और साम्प्रदायिकता का विरोध किया था। ये सभी रचनाएँ संक्षिप्त हैं। प्रशस्ति-काव्य नौ छन्दों में ही समाप्त है। यह प्रशस्ति-काव्य भी संस्कृत में है। कोमल शब्दावली के कारण उसमें लालित्य और मधुरता है। यद्यपि गोखले नरम दल के नेता थे, पर मानवीय अधिकारों के लिए सदा संघर्ष-रत रहे। उनके इस व्यक्तित्व को कवि ने सहज भावाभिव्यक्ति दी है। उन्होंने गोखले के जीवन की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख इस रचना में सुन्दर ढग से किया है।

पाठक जी की रचना 'हा, गोखले' स्व. गोखले के अस्थि-विसर्जन के अवसर पर प्रयाग में की गयी थी। यह प्रसंग बड़ा मार्मिक और भावपूर्ण था। इसमें गोखले के महिमामय और गौरवशाली व्यक्तित्व का स्मरण करते हुए उनके स्वर्गीय हो जाने पर हृदय की वेदना को प्रकट किया गया है। इस रचना की सहज अभिव्यक्ति के कारण उसका प्रभाव अधिक हो गया है। कवि इस प्रकार गोखले का स्मरण करते हुए—

मनुज मात्र के मध्य जिसे पूरन ममता थी।
निज परता से शून्य सर्वजन में समता थी॥

इन उद्‌गारों को भावपूर्ण ढंग से व्यक्त करता है—

अरे बता दो कोई कहाँ पर है, वह प्यारा।
भारत का प्रिय-पुत्र, गोखले प्राण हमारा।।

यह शोक गीत बाद में **'मनोविनोद'** में संकलित किया गया।

इसी प्रकार, इस संबंध में उनकी तीसरी रचना **'श्री गोखले गुणाष्टक'** है। यह रचना बहुत भावमयी न होकर घटनाओं को प्रस्तुत करती है। इसमें गोखले के जीवन की उन घटनाओं का उल्लेख है, जिनसे राष्ट्रीय जीवन प्रभावित हुआ है। गोखले प्रतिभासंपन्न आदर्श व्यक्ति थे। उन्होंने महत्त्वपूर्ण पदों पर रहकर देश का नेतृत्व किया। इस रचना में इन सब प्रसंगों और संदर्भों को लिया गया है। गोखले ने देश के गौरव की रक्षा के लिए एकता की भावना को विस्तार दिया है। गाँधी जी ने बाद में गोखले द्वारा उठाए गये राष्ट्रीय कार्य को आगे बढ़ाया—

जाति-पाँति-मत जनित भेद-भ्रम जिय सों टार्‌यौ।
जग-सेवा-वृत्त-नेम प्रेम सत-पंथ प्रचार्‌यौ।।
× × ×
सत्य समर्थन सेतु रह्यौ सन्नद्ध सदा ही।
परहित काज सिंचित स्वथं चिंता कछु नाही।।

इन पंक्तियों से कवि ने अपने नेता के चरित्र के एक पक्ष को सहज अभिव्यक्ति दी है। जहाँ कवि केवल जीवन की घटनाओं की चर्चा करता है, वहाँ भी सहज आत्मीय भाव बना हुआ है—

जै भारत : सं-सेवक समिति सम्प्रदाय थापन-करन।
× × ×
स्वजन उधारन-हेतु अफ्रिका देश पधार्‌यौ।
× × ×
सिच्छालय के हेतु द्रव्य-भिक्षा-व्रत लीनों।

गोखले के माध्यम से कवि अपने समाज की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है। देश का मानसिक विकास अवरुद्ध था, जीवन में अनेक कुण्ठाएँ और विकृतियाँ आ चुकी थी और देशवासी उद्देश्यहीन होकर स्वार्थ-भावना से आपस में लड़-झगड़ रहे थे। इसी अवसर पर गोखले जैसा कर्णधार देश को मिला। पाठक जी इस भावना को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करते हैं—

मनु अवनि अवन कोउ अवतर्‌यौ स्वर्गदूत नर रूप धरि।
पुनि गयौ बहुरि हरि-धाम द्रुत-विधि-प्रेरित भुवि काम करि।।

यह रचना वस्तुत: ब्रजभाषा में छप्पय छंद के माध्यम से प्रस्तुत की गयी है।

प्रशस्ति काव्यों में राज भक्ति को अभिव्यक्ति देनेवाली पाठक जी की रचना 'जार्ज वन्दना' है। जैसा उल्लेख किया जा चुका है, पाठक जी में भारतेन्दु युगीन उस भावना को भी देखा जा सकता है, जिसके अनुसार अंग्रेज़ी राज्य एक रूप में भारत के लिए वरदान था। भारतेन्दु जी के साथ 'प्रेमघन' ने भी अंग्रेज़ी सम्राट के प्रति कृतज्ञता का भाव व्यक्त किया है। इसी प्रकार पाठक जी ने छप्पय छंद में भारत आगमन के अवसर पर जार्ज पंचम का स्वागत किया। इस कविता में आठ छप्पय हैं। पहले में सम्राट की वंश-परम्परा, दूसरे-तीसरे में भारत में उनका स्वागत और अभिनन्दन, चौथे में राज्याभिषेक का माहात्म्य, पाँचवें-छठें में उनके राज्य का महत्त्व, सातवें में साम्राज्ञी की प्रशंसा और आठवें में दोनों को आशीर्वचन।

इन छंदों में कवि ने दृश्यों और भावों दोनों के चित्र प्रस्तुत किए हैं। परंपरा के यथातथ्य वर्णन के बाद उनके आगमन पर दर्शन के लिए उमड़ती हुई प्रजा का चित्र है। नगर के मार्ग और भवनों की सज्जा से उनका वर्णन सुन्दर हो गया है—

लखि नन्दन-छवि नन्दन लज्जित, इन्द्रप्रस्थ लखि इन्द्रपुरि,
जय-अलख-पूर्व-भूस्वर्ग कर, सुर-निसर्ग, नृपवर्ग-धुरि।

इसी प्रकार बंगाल को पुन: एक कर देने जैसी अनेक घटनाओं का वर्णन किया गया है, जिनको अंग्रेज़ी राज्य की न्यायप्रियता और दूरदर्शिता माना गया है। साम्राज्ञी के व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने में कवि की अभिव्यक्ति भावपूर्ण हो गयी है—

पलक पाँवड़े आप हित जो पै देहिं बिछाय।
लोचन जल पद युगल तुम धोवैं हिय हरसाय॥

अन्तत: कवि सम्राट और साम्राज्ञी को अपना भावमय आशीर्वाद देता है। रचना में यह भारतीय नाटकों के भरतवाक्य जैसा है—

जय दिन-दिन दुगुनित होय सो अभिलासा आसा प्रबल।
जुग जुगनु जार्ज मेरी जियहु सुख- सुहाग जोरी जुगल॥

यद्यपि यह रचना परम्परित काव्य-रूप जैसी है, परन्तु वर्ण्य विषय और भाषा की अभिव्यक्ति की दृष्टि से शास्त्रीय होकर भी इस रचना में कवि की भावशीलता को लक्षित किया जा सकता है। इसी कारण अनेक स्थलों पर इसकी अभिव्यक्ति की सरलता मन को स्पर्श करनेवाली है।

अपने श्वास रोग से परेशान होकर पाठक जी कई स्थानों पर जलवायु

परिवर्तन की दृष्टि से गये थे। १९१३ ई० में डॉक्टरों ने उन्हें देहरादून जाने की सलाह दी वहाँ की प्राकृतिक शोभा के प्रति उनके मन में पहले से आकर्षण था, अतः उन्होंने स्वीकार कर लिया। वहाँ कुछ दिन वह रुके, पर कोई लाभ नहीं हुआ। तव पाठक जी कुछ दिन के लिए शिमला गये और फिर वापस इलाहावाद आ गये। इस प्रवास का उपयोग उन्होंने 'वरवै' छंद में इस यात्रा-प्रसंग पर **'देहरादून'** नामक रचना करने में किया। यह छंद उन्हें विशेष प्रिय था और बालकृष्ण भट्ट के प्रभाव से इस रचना में पाठक जी ने पूर्वी बोली का प्रयोग किया है। भट्ट जी के अनुसार इस छंद में 'वा' अथवा 'या' प्रथम तथा तीसरे चरण के अंत में आता है। इसका सुन्दर निर्वाह पाठक जी ने इसमें किया है। इस पूर्वी प्रयोग को उनकी लोक-रुचि का एक रूप माना जा सकता है। इस रचना में यात्रा के प्रसंग, स्थान, दृश्य आदि का वर्णन है। वर्णनों में कवि की भावशीलता उसकी स्वच्छन्द मनोवृत्ति का परिचायक है। उसकी सरलता और सहजता आकर्षक है। इस लघु वरवै छंद में घटना-क्रम और परिस्थितियों का वर्णन सहज और आत्मीय है—

कठिन घोर दुपहरिया लुअ कर जोर।
चलेउ तेज असवरिया टेसन ओर॥
तुरतहि सब असबबवा बिलटी कीन।
भारी भीर सबबवा संग नहिं लीन॥

यहाँ वर्णन स्वाभाविक और सहज हैं और परिस्थिति की भावशीलता को व्यक्त करते हैं। पर साथ ही अलंकारों का प्रयोग इस प्रकार हुआ है कि वर्णन की सहज स्वाभाविकता अधिक सुन्दर तथा आकर्षक हो गई है—

बैठत तुरत रेयलिया सीटी दीन।
बिजु अस चपल मेअलिया चाल प्रवीन॥
पहिले चलिस चिविलिया कोमल चाल।
पुनि पल पल अलवेलिया बढिस वेहाल॥

यहाँ शब्दों का चयन और उनका क्रमिक प्रयोग यात्रा की परिस्थिति और अनुभूति को सहज मार्मिक बनाता है। इस छंद में इस प्रकार के संक्षिप्त वर्णन शब्दों के ध्वनि और रूप चित्रों के माध्यम से भावमय हो गये हैं। 'वा' और 'या' के पूर्वी प्रयोग अपने माधुर्य और अपनी सहजता में अभिव्यक्ति को स्वच्छंद वातावरण प्रदान करते हैं।

अपने परिवार के सनातनी वातावरण में पल कर भी पाठक जी रूढ़िवादी न होकर मुक्त और स्वतंत्र विचारों के थे। पर अपनी संस्कृति के स्वस्थ रूप और

भावों के प्रति उनकी आस्था थी। देश के प्रति उनकी भक्ति-भावना अनेक प्रकार से अभिव्यक्त हुई है। 'देहरादून' रचना में उनकी यह प्रवृत्ति अनेक रूपों तथा स्तरों पर अभिव्यक्त हुई है। गंगा के प्रति उनका भाव इसी रूप में ग्रहण किया जा सकता है—

नमो नमो गिरि-तनया अद्भुत वारि।
सुर-धुनि भारत प्रनया अघ तरवारि॥
नमो ब्रह्म-द्रव रूपनि प्रेम-फुहार।
तरल तरंग अनूपिनि गंग-सुधार॥

इस भक्ति-भावना में गंगा के प्रति राष्ट्रीय प्रेम का अन्तर्भाव है। बीच के प्रसंगों में अनेक प्रदेश के वासियों का वर्णन उनकी अपनी विशेषताओं के साथ आ गया है। रोचक बात है कि अपने प्रदेशवासियों का वर्णन उन्हें बेमन से करना पड़ता है, क्योंकि उनमें गुणों का अभाव है—'यहि सन करन बखनवा मन अनखाय'। इसी प्रकार यहाँ इस रचना में कवि ने अपने देशवासियों के दोषों और कुप्रवृत्तियों का वर्णन आन्तरिक दुःख और खेद के साथ व्यक्त किया है। हमारे देशवासियों को अपने पूर्वजों के गौरव का ध्यान नहीं, वे उसके योग्य नहीं रह गये हैं—'इन महँ कोउ बड़प्पन उन कर नाहिं।' इन देशवासियों में 'ईरषा द्वेस दुसहवा द्रोह दु-भाव' आदि अनेक बुराइयाँ घर कर चुकी हैं। इनके कारण 'अकथ-क्लेस दुख-मुलवा जग विख्यात' है। इस प्रकार सारी संस्कृति का 'तहस-नहस' होता जा रहा है। 'कुमति-अधीन' होकर जन समाज 'बुधि-बल-हीन' होता जा रहा है। इस देश-स्थिति से कवि का हृदय वेदना-व्यथित होकर ईश्वर का स्मरण करता है, क्योंकि उद्धार का दूसरा मार्ग उसके सामने स्पष्ट नहीं हो पाया है। देहरादून के अनेक दर्शनीय स्थानों का पाठक जी ने आत्मीय भाव से सुन्दर वर्णन किया है, जिससे उनकी वर्णन-शैली में स्वच्छंदता को निहित देखा जा सकता है।

देहरादून से मसूरी के बीच अनेक पर्वत श्रेणियाँ और घाटियाँ हैं। इनमें घने वन और उज्ज्वल प्रपात हैं, जल-स्रोतों के प्रवाह भी रम्य हैं। इस मार्ग के दृश्य बड़े ही आकर्षक और रमणीय हैं। पाठक जी इन प्रकृति के अनेक रूपों में फैले हुए दृश्यों का वर्णन भावपूर्ण ढंग से करते हैं। ये वर्णन संश्लिष्ट रूप में प्रस्तुत हुए हैं और उनमें अलंकरण विधान से आकर्षण बढ़ गया है। पर भाषा की सहजता और वर्णन की आत्मीयता से ये वर्णन रोमैण्टिक भाव को व्यंजित कर सके हैं। पर्वतों पर उमड़ते हुए बादलों का यह वर्णन सुन्दर और प्रभावी है—

पुनि जब श्याम सघनवा घन उमड़ात।
गिरि वन सिखर भवनवा सबहि ढरात॥

इन बादलों में वन, पर्वत, शिखर और ढालों के भवन सब अदृश्य हो जाते हैं। बिजली क्षण-क्षण चमककर इस प्रकार छिप जाती है 'मनु कोउ सुरग मेहरिया उझकि लुकात'। यह लुकने-छिपनेवाली महिला की कल्पना सुन्दर है। इसी प्रकार कवि लहराती हुई सोनहरी लता की कल्पना शची की चुनरी की कोर के रूप में करता है। इस प्रकार पाठक जी ने प्रकृति के अनेक भावपूर्ण एवं मौलिक चित्र और बिम्ब प्रस्तुत किये हैं।

पाठक जी के पिता, पितामह और प्रपितामह भक्ति-भाव से प्रेरित थे। 'श्रीमद्भागवत' में प्रतिपादित 'ईश्वरे निश्चला भक्तिः' श्रीधर पाठक के संस्कार में व्यंजित थी। इस प्रभाव को अपने पिता की भावना के अनुकूल वह अपनी कविताओं में अभिव्यक्ति देते थे। श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय में 'श्री गोपिका गीत' के अन्तर्गत रास-क्रीड़ा का एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग है। रास करते हुए कृष्ण गोपियों को आनन्द-विभोर कर अन्तर्धान हो जाते हैं। रासानन्द काल में सहसा कृष्ण के न मिलने पर गोपियों का आनन्द दारुण वियोग में परिणत हो जाता है। वियोग-विह्वल होकर गोपियाँ रोती-विलाप करतीं कृष्ण के पद-चिह्नों का अनुसरण करती हुई उनको खोजती हैं। यमुना के तट पर पहुँच कर वे उनका समवेत स्वर में गुण-गान करती हैं। यही गीत 'श्री गोपिका गीत' है। इसके अन्तर्गत गोपियाँ कृष्ण के गुणों का गान करती हैं। वे उनके अनेक उपकारों का स्मरण करती हैं, अपनी हार्दिक व्यथा के साथ उनके प्यार-दुलार का गान करती हैं। पाठक जी ने इसी भावाभिव्यक्ति का आधार लिया है। उन्होंने इस काव्य के बारे में स्वयं लिखा है—"इसमें मूल बहुत छूट गया है, पर शायद कुछ बिगाड़ नहीं हुआ, उसकी छाया बहुत कुछ आ गयी है।" इस कथन से स्पष्ट है कि उन्होंने छायानुवाद प्रस्तुत किया है, पर मूल की भावना सुरक्षित रह सकी है। मूल की भक्ति का वेग, आत्म-समर्पण की सघन आन्तरिकता और अभिन्न एकरसता को उसी रूप में पाठक जी के गीतों में अभिव्यक्त नहीं पाया जाता, पर उनमें गोपियों की मानसिकता और उनके भावों की मार्मिकता को अभिव्यक्ति अवश्य मिल सकी है। पाठक जी की गोपियों में प्रेम की उन्मन भाव-व्यंजना के साथ विनय और मर्यादा की करुण-व्यथा स्पष्ट तौर पर लक्षित की जा सकती है।

गोपियों की वाणी में प्रिय के वियोग की करुण-व्यथा लक्षित होती है। कृष्ण के आकस्मिक निष्ठुर व्यवहार से उनका हृदय अनुताप का अनुभव करते हुए भी दर्शनों की याचना करता है। विगत कृष्ण-लीलाओं का स्मरण करती हुई गोपियाँ कृतज्ञता का अनुभव करती हैं और उनके प्रेम तथा सौन्दर्य से आकर्षित तथा विमुग्ध हैं। अपनी पिछली क्रीड़ाओं का स्मरण उन्हें आता है और उनके अन्तर में अपने प्रिय के लिए कामना जाग जाती है। संयोग और क्रीड़ा का रसमय, आनन्द-मय और अमृतमय जीवन स्मरण कर गोपियाँ वियोग के दुःख से संतप्त हो उठती

हैं। उनके मन का यह भाव—

पति सुतादि की लाज छांड़ के।
तव समीप हैं आं गई छली।

उन्हें व्यथित करता है और वे उपालम्भ देती हैं—

मधुर गीत से मोह के हमें।
उचित है अहो त्यागना नहीं।

उपालम्भ की मार्मिक भावना 'छली' शब्द में व्यंजित है। गोपियों ने कृष्ण-प्रेम के लिए बहुत कुछ सहा है, झेला है। पर कृष्ण उनके विश्वास का निर्वाह नहीं कर सके। जब कृष्ण संसार के लिए त्राणकारी और मंगलमय कहे जाते हैं, तब उनके प्रति उदासीन और निष्ठुर क्यों हो गये हैं, यह भाव बार-बार गोपियों में व्यक्त हुआ है। पाठक जी के लिए गोपियों का नारीत्व चिरन्तन शालीनता, भावशीलता और करुणा को व्यंजित करनेवाला है। उन्होंने भक्ति-भावना के आत्म-समर्पण और आत्म-विसर्जन की अपेक्षा इस करुणा और भाव-विह्वलता को अधिक महत्त्व दिया है। इस दृष्टि को रोमैण्टिक भावबोध पर आश्रित माना जा सकता है।

पाठक जी ने १८८५ ई० में ही 'बाल भूगोल' नामक पुस्तक विद्यार्थियों की दृष्टि से लिखी थी। पुस्तक मुख्यतः गद्य में प्रारंभिक छात्रों के लिए मनोरजक शैली में प्रस्तुत की गयी है। प्रारंभ में आकाशीय पिण्डों का आपसी संबंध आदि का परिचय है, फिर भौगोलिक परिभाषाएँ उदाहरण सहित दी गयी है। पुस्तक के अन्तिम अंश में भूगोल की परिभाषाओं और उसके अनेक विषयों को कविता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मुख्य शीर्षक इस प्रकार के हैं—आकाशवर्ती गोले, भूगोल ठेठ, जल और थल, महाद्वीप,महासागर और कटिबन्ध आदि। यह चार भागों में विभक्त है। इस परिचयात्मक पद्य में रोचकता है और कवित्व की झलक भी मिलती है—

ये गोले इस पोल में रहें अधर सब काल।
आकर्षण की शक्ति से नियमित इनकी चाल॥

पाठक जी ने निरन्तर गद्य साहित्य की रचना की है। गद्य साहित्य में पूर्ण और स्वतंत्र रचना के रूप में एक कथाकृति 'तिलस्माती मुंदरी' ही प्राप्य है। अन्य लेख एवं निबन्ध आदि हैं, जिनका प्रकाशन उस समय की पत्र-पत्रिकाओं में होता रहा है। समकालीन महानुभावों के नाम उनके अनेक पत्र महत्त्वपूर्ण हैं। इनके निबन्धों को विवेचनात्मक, सामयिक और ललित वर्गों में बाँटा जा सकता है। मनोरंजन की दृष्टि से उन्होंने कुछ लतीफ़े और चुटकुले आदि भी लिखे हैं। गद्य

के विकास में उनके लेखन का महत्त्व है। उनके विवेचनात्मक और समस्यापरक लेखों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। उन्होंने अपने जीवन पर आधारित जो लेख लिखे हैं, उनको 'संक्षिप्त जीवन परिचय' के रूप में प्रकाशित किया गया है। जीवनी सरल और सरस शैली में लिखी गयी है। भाव-पूर्ण प्रसंगों को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, लखनऊ के वार्षिकोत्सव के अवसर पर हिन्दी की प्रगति से सम्बन्धित व्याख्यान भी बहुत उपादेय है।

भारतेन्दु युग से हिन्दी में कथा साहित्य लेखन का प्रारंभ हुआ। भारतेन्दु के समकालीन लेखकों में लाला श्रीनिवास दास ने 'परीक्षागुरु', राधाकृष्ण दास ने 'निस्सहाय हिन्दू', बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' जैसे उपन्यासों का लेखन शुरू किया था। इसी क्रम में देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी और किशोरीलाल गोस्वामी ने जासूसी, तिलस्मी और रोमांचक उपन्यासों की रचना की है। श्रीधर पाठक ने भी **'तिलस्मी सुंदरी'** नामक नौ अध्यायों में समाप्त होनेवाले उपन्यास की रचना की है। यह ठीक तिलस्मी उपन्यास नहीं माना जा सकता, परन्तु इसमें चमत्कार और रोमांस का पूरा उपयोग किया गया है। इसमें कश्मीर के राजा का सिंहासनच्युत होना और समस्त घटनाक्रम के साथ पुनः सिंहासन प्राप्त करना अनेक कौतुकपूर्ण और चमत्कारी घटनाओं के साथ वर्णित है। इस घटनाक्रम के कारण और उनकी चमत्कारिक स्थितियों के वर्णन से पाठक जी के इस उपन्यास को तिलस्मी जासूसी उपन्यास के रूप में माना जा सकता है। महत्त्व की बात है कि इसकी कथावस्तु में पर्याप्त विस्तार है और घटनास्थल एक प्रदेश तक सीमित न होकर कश्मीर, पंजाब और गंगोत्री आदि अनेक क्षेत्रों से सम्बद्ध है। साथ ही मानवीय परिस्थितियों और जीवन की समस्याओं के अनेक रूप प्रस्तुत हुए हैं। इस प्रकार पाठक जी की दृष्टि इस उपन्यास में अधिक व्यापक है। इस उपन्यास की कथावस्तु संक्षेप में इस प्रकार है :

"अपने सिंहासन से हटकर कश्मीर का एक राजा गंगोत्री के तट पर योगी के रूप में रहता है। गंगा के जल में गिरे हुए दो कौवों को उसने जीवनदान दिया, जिसके बदले में उन्होंने उसे एक अँगूठी प्रदान की। योगी को पक्षियों की बोली समझने की शक्ति मिली, आगे इन कौवों से राजा को अपनी पुत्री की मृत्यु और अपनी एकमात्र दौहित्री के प्राण संकट का समाचार मिला। दौहित्री की देखभाल के लिए राजा ने कौवों को कश्मीर के राजमहल में नियुक्त किया। विमाता (राजा की बेटी की सौत) ने अपने गुलाम बब्बू के सहयोग से दौहित्री का प्राण लेना चाहा। पर पक्षियों की सहायता से वह महल से भाग निकली। लेकिन दुर्योग से उसकी सहायक अँगूठी उँगली से गिर गयी और वह फिर संकट में फँस गयी। इसी तरह विमाता राजा की दौहित्री को मारने की योजनाएँ बनाती रहती है और पक्षी उसे

बचा लेते हैं। यह क्रम चलता है और कई घटनाएँ उलझती जाती हैं। उदाहरण के लिए उसका कंजड़ी के हाथ लग जाना, लाहौर के कोतवाल की बीवी द्वारा ख़रीदा जाना, कोतवाल की बेटी दया देई और दौहित्री (नातिन) चाँदनी से उसका प्रेमभाव स्थापित होने का घटनाक्रम चलता है। इस बीच विमाता ने लाहौर पर आक्रमण किया और पुनः नातिन विमाता के पास पहुँचा दी गयी। अन्ततः कौवों से सन्देश पाकर राजा योगी वनउक़ाबों की सहायता से कश्मीर पर आक्रमण करता है और अपना राज्य प्राप्त करता है। राजा विमाता और बब्बू गुलाम को क्षमा प्रदान करता है। नातिन का विवाह लाहौर के राजकुमार से सम्पन्न होता है। इस नव-दम्पति को राजा अपना कश्मीर का राज्य सौंप कर फिर योगाभ्यास के लिए गंगोत्री चला जाता है। पक्षी दौहित्री के मित्र के रूप में उसके समीप उपवन में रहने लगते हैं।"

इस संक्षिप्त कथावस्तु से हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि इस घटनाक्रम में आकस्मिकता, आश्चर्य, कौतुक और चमत्कार जैसे तत्त्व विशेष रूप से संयोजित हैं। मानवीय जीवन के यथार्थ से इसका संबंध न होकर इसका आधार मनुष्य की कौतूहल और रोमांचक वृत्ति पर है। इस कथावस्तु में पात्रों के चरित्र का विकास नहीं देखा जा सकता। केवल कुछ मानवीय वृत्तियों के प्रतिनिधि पात्र हैं, जैसे पिता, पुत्री विमाता आदि। घटनाएँ भी न तो मानवीय स्थितियों का परिचय देती हैं और न ही चरित्रों का उद्घाटन करती हैं। ये घटनाएँ मुख्यतः पाठक के कौतुहल को चमत्कार के आधार पर आगे बढ़ाती हैं। इस उपन्यास में स्पष्टतः जासूसी या तिलिस्म का उपयोग नहीं किया गया है। इसमें मुंदरी का केन्द्रीय महत्त्व है। इसके प्रभाव से अनेक आश्चर्यजनक मानवेतर घटनाएं इस उपन्यास में व्याख्यायित हैं। उदाहरण के लिए राजा की दौहित्री हंसों की सहायता से झील पार करती है, उल्लू की सहायता से मीनार से उतरती है और इसी प्रकार उक़ाबों की सहायता से योगी राजा कश्मीर का अपना राज्य वापस प्राप्त करता है। इस उपन्यास की कथावस्तु में लोक कथाओं के अभिप्रायों का उपयोग रोचक ढंग से किया गया है।

४

महत्त्व और उपलब्धियाँ

श्रीधर पाठक भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग में निरन्तर रचनाक्रम में संलग्न रहे हैं। विशेष उल्लेखनीय बात है कि उन्होंने हिन्दी में प्रारम्भ होनेवाली इस काव्य प्रवृत्ति को लम्बे कार्यकाल में निरन्तर विकसित किया है। जब एक काव्य-प्रवृत्ति भाषा और भाव दोनों स्तरों पर विकास का एक स्तर प्राप्त कर लेती है, तब उसकी अभिव्यक्ति को अधिक सशक्त बनाना और व्यापक स्तर पर प्रतिष्ठित करना अपेक्षाकृत सरल और संभव कार्य होता है। परन्तु भाषा और भाव-व्यंजना को अपरिपक्व अवस्था से क्रमशः सक्षम बनाना अधिक कठिन कार्य है। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी के काव्य की प्रौढ़ता और व्यंजना की क्षमता जिस रचनात्मक सामर्थ्य के साथ अभिव्यक्ति ग्रहण करती है, उसके पीछे उन रोमैण्टिक भाव धारा के कवियों के रचनात्मक प्रयत्नों को देखना-समझना अनिवार्य है, जिनमें श्रीधर पाठक सबसे अधिक महत्त्व के हैं।

अंग्रेज़ी के गोल्डस्मिथ जैसे कवि के प्रति श्रीधर पाठक का आकर्षित होना अपने आप में महत्त्व की बात है। गोल्डस्मिथ भी अंग्रेज़ी के वर्ड्सवर्थ, शैली, कीट्स और ब्राउनिंग जैसे रोमैण्टिक कवियों की रचना की पृष्ठभूमि में अपनी काव्य मनोवृत्ति के साथ महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। गोल्डस्मिथ का प्रकृति-प्रेम, सामान्य लोकजीवन के प्रति आकर्षण, उनकी यायावरी वृत्ति, प्रेम भावना और दार्शनिकता एक विशेष प्रकार के रोमैण्टिक भाव का परिचय देते हैं। श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ के खण्ड-काव्यों का अनुवाद कवि के साथ अपना भाव-तादात्म्य स्थापित करके किया है। इसका कारण स्पष्ट है कि अपने परिवेश में पाठक जी लोकजीवन के प्रति आकर्षित रहे हैं, उसके साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर सके हैं और अपने को उसके सुख-दुःख की अभिव्यक्ति का माध्यम बना सके हैं। भारतीय सन्दर्भ में जीवन और परिवेश के प्रति यह लगाव और उसके साथ प्रतिक्रियाशील

होना साहित्य में बहुत लम्बे अर्से के बाद लक्षित हुआ।

यह अवश्य है कि भारतेन्दु युग में समाज नव-जागरण के दौर से गुजर रहा था, उसे अपनी सही स्थिति का बोध होने लगा था। साहित्यकार ने अपनी संवेदनशीलता के कारण इसका अनुभव अधिक तीव्रता से किया। परिस्थिति का बोध और समस्याओं की जागरूकता भारतेन्दु युग के गद्य साहित्य में वर्ण्य विषय बना। परन्तु साहित्य के काव्य रूप में सघन मार्मिकता की अपेक्षा होती है। भारतेन्दु युग तक साहित्य में यह मार्मिक अनुभव क्षमता विकसित नहीं हुई थी। इस कार्य का प्रारम्भ श्रीधर पाठक के काव्य में भावाभिव्यक्ति के स्तर पर प्रारंभ हुआ। जब नाटक, कथा और निबन्ध जैसे साहित्य रूपों में परिस्थिति, पात्र और समस्याओं को अंकित करना संभव हुआ, उस समय युग चेतना का काव्य तत्कालीन परिस्थिति के हास्य, व्यंग्य और विसंगतियों को युग-जीवन में ग्रहण कर सका। श्रीधर पाठक एक ऐसे संवेदनशील कवि इस युग में हुए, जिन्होंने अपनी समसामयिक परिस्थिति के ह्रास और विडम्बनाओं को व्यक्तिगत मार्मिक अनुभव के स्तर पर अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया।

साहित्य के विकास क्रम में यह निरंतर देखा जा सकता है कि एक युग में जब जीवन की सहज अभिव्यक्ति लोक समाज के द्वारा ग्रहण करने योग्य भाषा में अभिव्यक्त होती है, तब उसकी अभिव्यक्ति का यह रूप क्रमशः परंपरित और शास्त्रीय हो जाता है। इस शास्त्रीयता के प्रचलन में काव्य में भाव-व्यंजना और अलंकार-विधान दोनों में कृत्रिमता आती जाती है। परन्तु उसकी प्रतिक्रिया भी स्वाभाविक हो जाती है। रचनाकार अपने युग जीवन से गहरे लगाव का अनुभव कर जीवन की सहज अभिव्यक्ति करने में तत्पर होता है। रीतिकाल के अन्तिम चरण में काव्य कृत्रिम और चमत्कारी होता गया है। भक्त कवियों ने आध्यात्मिक जीवन के अनुभवों को लोक जीवन के स्तर पर अभिव्यक्ति दी थी, परन्तु रीतिकाल में क्रमशः लोक जीवन का यह आधार हटता चला गया। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में भारतीय समाज सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्तर पर आन्दोलित हुआ। और यह ऐसा वातावरण था जिसमें हिन्दी कवियों का मन अपनी पूरी परिस्थिति से प्रतिक्रियाशील हुआ। पाठक जी काव्य के स्तर पर इस प्रतिक्रिया से सर्वाधिक प्रभावित हुए और उन्होंने अपने काव्य में समाज के पुनर्जागरण को महत्त्वपूर्ण ढंग से अभिव्यक्ति दी। वह सनातनी और परंपरावादी परिवार में जन्म लेकर भी सामाजिक न्याय और लोकप्रेम के प्रति निष्ठावान रहे। विरोधों के बीच सही दृष्टि को अपना लेने का कार्य पाठक जी ने किया है। वह सरकारी कर्मचारी और अधिकारी थे और उस समय ब्रिटिश राज्य था। उस स्थिति में भी उनमें देश के प्रति गहरा प्रेम था और राष्ट्रीयता की भावना को अनेक रूपों में उन्होंने अभिव्यक्ति दी है। इसी प्रकार संस्कृत भाषा की परंपरा से जुड़े होते हुए भी उन्होंने

सदा लोक भाषा के प्रयोग पर बल दिया है। पाठक जी ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से यह समझ लिया था कि आधुनिक युग में ज्ञान-विज्ञान की प्रगति खड़ी बोली हिन्दी में ही संभव है। और उनकी यह भी मान्यता रही है कि कविता की भाषा और व्यवहार की भाषा में अन्तर नहीं होना चाहिए। इसीलिए व्रजभाषा का काव्य पर्याप्त लिखने पर भी उन्होंने खड़ी बोली में काव्य रचना पर अधिक बल दिया।

पाठक जी का ध्यान सबसे पहले प्रेम के स्वच्छन्द रूप पर गया है और यह प्रेम का रूप जीवन की स्वच्छन्द स्थिति से जुड़ा होता है। भक्तिकाल में मानवीय प्रेम का उदात्तीकरण आध्यात्मिक रूपों में हुआ था। रीतिकाल में यह प्रेम केवल आलम्बन, उद्दीपन भावों और उसके संचारी भावों के प्रसार में अंकित किया गया। यह सारा श्रृंगार-वर्णन विभिन्न प्रतिरूपों में प्रस्तुत हुआ है। चाहे श्रृंगार का संयोग और वियोग पक्ष हो अथवा उनके अन्तर्गत विभावानुभाव संचारियों का संयोजन हो; जबकि यह सब जीवन के सहज अनुभव क्षेत्र से अलग पड़ता गया। पाठक जी ने प्रेम को शास्त्रीय श्रृंगार रस के बन्धन से मुक्त किया और लोक जीवन के स्तर पर उसे अभिव्यक्ति दी। इसी प्रेम के सहज और स्वस्थ रूप को उन्होंने गोल्डस्मिथ के काव्य में देखा-परखा और उससे प्रेरणा ली।

इसी प्रकार प्रकृति का प्रयोग हिन्दी-साहित्य में उद्दीपन रूप में किया जाता रहा था। स्वतंत्र रूप से प्रकृति मानवीय आलम्बन के रूप में ग्रहण नहीं की गयी। भक्तिकाल में प्रकृति पुरुष की प्रति छवि है, वह रचना की शक्ति भी है। ऐसी स्थिति में प्रकृति कहीं भक्ति-काव्य में भगवान् की लीला की पृष्ठभूमि अथवा अंग रूप है। अन्यत्र प्रकृति प्रेम-भाव के उद्दीपन के रूप में प्रस्तुत है। रीतिकाल में तो प्रकृति उद्दीपन रूप में ही प्रस्तुत हुई है, यत्र-तत्र उसके वस्तुचित्र अवश्य मिल सकते हैं। स्पष्टतः इस प्रकार प्रकृति मानव जीवन की सहचरी और भावात्मक संबंध में नहीं रह सकती। यहाँ श्रीधर पाठक के महत्त्व को देखा जा सकता है। पाठकजी ने प्रकृति के सहज स्वच्छन्द रूप को अपने काव्य में अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने प्रकृति को मानवीय जीवन और राष्ट्रीय सन्दर्भ में देखा और आत्मीय भाव से उसका अंकन किया। प्रकृति के सौन्दर्य का उसके अनेक रूपों और पक्षों में अंकन करते हुए उन्होंने प्रकृति से प्रेरणा प्राप्त की है। यह अवश्य है कि जिस प्रकार अंग्रेजी के रोमैण्टिक कवियों और हिन्दी के छायावादी कवियों ने प्रकृति में मानवीय भावों की आन्तरिक सूक्ष्मता और सघनता को अभिव्यक्ति दी है, वैसा श्रीधर पाठक के काव्य में नहीं है। परन्तु उनके काव्य में प्रकृति के सौन्दर्य की सहजता और मानवीय भाव-स्थितियों की व्यंजना हुई है।

श्रीधर पाठक ने रीतिकाल के काव्य की रूढ़िवादिता और अलंकारप्रियता के विरुद्ध भारतेन्दु-युगीन समाज सापेक्षता और प्रत्यक्ष जीवन के अनुभव को अपनाया। इस स्तर पर अपने काव्य में वह अपनी स्वच्छन्द लोकपरक दृष्टि में इस

युग के कवियों से विशिष्ट हैं। इसी प्रकार अगले द्विवेदी युग में भी वह अपना अलग महत्त्व रखते हैं। द्विवेदी जी से प्रेरित कवियों ने इतिहास और पुराण के इतिवृत्त के आधार पर ऐसे नायकों के कथानक को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति दी है, जो देश को ह्रास और पतन से निकालकर नये उन्मेष में प्रेरणा दे सके। पाठक जी ने अपनी मूल स्वच्छन्द भावना के विकास क्रम में लोक जीवन और राष्ट्र-चेतना को अभिव्यक्ति दी है। इस प्रकार दो आधुनिक युगों में रचना कर्म में संलग्न रहकर पाठक जी ने रोमैण्टिक काव्य की अनेक प्रवृत्तियों को समाहित किया। उनमें अंग्रेज़ी के रोमैण्टिक कवियों की कतिपय प्रवृत्तियाँ लक्षित की जा सकती हैं। वह टॉमसन, कॉलिन्स और ग्रे जैसे कवियों के अधिक निकट हैं। इनके काव्य में प्रकृति का दृश्य-विधान और प्रेम, मानवीय भावों की समानान्तरता और स्वच्छन्द भावशीलता इन कवियों के समान पायी जाती है। यद्यपि इनकी भाव-व्यंजना और इनका काव्य-कौशल अंग्रेज़ी के श्रेष्ठ रोमैण्टिक कवियों के स्तर का नहीं है, पर जीवन और जगत् के प्रति उनका लगाव इन कवियों के समान है। उनमें प्रकृति के प्रति आकर्षण और मनुष्य के उद्देश्यों के प्रति आस्था वर्ड्सवर्थ के समान है। बायरन, शैली और कीट्स के समान उनमें स्वतंत्रता की कामना है और सामाजिक कुरीतियों के प्रति विरोध भाव है। परन्तु इन कवियों जैसा अभिव्यक्ति का सौंदर्य और भाव-व्यंजना की सूक्ष्मता उनमें नहीं है।

आधुनिक युग की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता मानवता की स्थापना है। मध्यकालीन जीवन दृष्टि ईश्वर को केन्द्र में मानकर चलती है। ईश्वर ही सर्वोपरि सत्य हैं, मानवीय जीवन की सार्थकता ईश्वर के सन्दर्भ में ही स्वीकार की गयी थी। आधुनिक युग दृष्टि का केन्द्र मनुष्य को मानकर चलता है। ईश्वर भी उसका एक मूल्यगत चरम लक्ष्य हो सकता है। यह जीवन दर्शन स्वच्छन्द भावना के अन्तर्गत आता है। इस दर्शन के अनुसार जीवन कर्मक्षेत्र है। और उसकी सार्थकता भी कर्म में है। पाठक जी में अपने पारिवारिक संस्कारों के प्रतिकूल जीवन एवं कर्म की यह आस्था देखी जा सकती है। उनके लिए यह संसार झूठा नहीं है और न केवल दुःख का कारण है। इसको सच्चा मानकर हँसते हुए हमको अपने कर्म में लगा रहना चाहिए। यह मान लेने पर भी कि संसार में सब कुछ नष्ट होता है, यह स्वीकार करके चलना अधिक संगत और सार्थक है कि जीवन कर्म का क्षेत्र है और इसके बीच हमको आनन्द प्राप्त करना है। देश को उस समय इस प्रकार की प्रेरणा की बड़ी आवश्यकता थी, क्योंकि अपने कर्म में लगा हुआ समाज ही विकसित होता है और स्वस्थ रह सकता है। ध्यान देने की बात है कि पाठक जी ने इस प्रकार की प्रेरणा सरल और सहज शैली में दी है। इनके काव्य में अपने समाज की सुषुप्त चेतना को जगाने की क्षमता है।

पाठक जी के काव्य की एक महत्त्वपूर्ण दिशा राष्ट्रीय भावना की ओर है।

इसके अंतर्गत उनकी अनेक कविताएँ आती हैं, जिनमें तत्कालीन समाज की दयनीय स्थिति का वर्णन है। विदेशी शासन के अन्तर्गत भारतीय समाज की स्थिति अनेक दृष्टियों से पतनोन्मुखी हो चुकी है। समाज का नैतिक जीवन विशृंखलित हो चुका है। अनेक प्रकार के करों से जन-समाज दुःखी और जर्जर हो गया है। अकाल भी पड़ रहे हैं। पाठक जी ने अपने गीतों में इन सब भावों को अभिव्यक्ति दी है। विशेष बात है कि अगले युगों में इस प्रकार की स्थितियों और भावों को अनेक कवियों के द्वारा अभिव्यक्ति मिली, परन्तु पाठक जी ने प्रारंभ में इस प्रकार की कविताओं की रचना की। पाठक जी ने देश के अतीत गौरव की भावना को भी अभिव्यक्ति दी है, साथ ही वर्तमान स्थिति पर क्षोभ भी प्रकट किया है। उनके गीतों में देश की महिमा का वर्णन और उसके प्रति श्रद्धा भाव की अभिव्यंवित है। अनेक कवियों के समान उन्होंने भारत जननी की वन्दना की है। और देश के नव-निर्माण की आकांक्षा प्रकट की है।

पाठक जी साधारण जन-समाज से निकटता का अनुभव करते थे। काव्य-रचना की उनकी दृष्टि केवल शिष्ट समाज पर केन्द्रित नहीं रही, उनके भाव क्षेत्र में साधारण निर्धन जन-समाज भी रहा है। जैसाकि उल्लेख किया गया है, उन्होंने देश और समाज के प्रेमपरक ऐसे गीतों की रचना की है जो सामान्य काम करनेवाली स्त्रियों के द्वारा भी गाये जाने योग्य है। इसी प्रकार उन्होंने लोक सामान्य में प्रचलित छन्दों का प्रयोग भी किया है। वस्तुत: पाठक जी की दृष्टि सदा अपने लोक समाज पर रही है और इसी कारण क्या भाषा, क्या वस्तु और क्या शैली सभी क्षेत्रों में वह सहज स्वच्छन्द रह सके हैं। साथ ही प्रौढ़ स्वच्छन्द भाव धारा के छायावादी कवियों के लिए उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की है।

श्रीधर पाठक के साथ एक ऐसी काव्य-परम्परा चली है, जो उनकी भावनाओं और प्रवृत्तियों के साथ है। भारतेन्दु युग के अन्य कवियों में केवल इस स्वच्छन्द भावना के स्फुलिंग मात्र देखे जा सकते हैं। परन्तु ठाकुर जगमोहन सिंह में प्रकृति और प्रेम की अभिव्यक्ति एक सीमा तक स्वच्छन्द मानी गयी है। द्विवेदी युग में ऐसे कतिपय कवियों का उल्लेख किया गया है, जो अपनी मानसिकता और अभिव्यक्ति में पाठक जी के स्तर पर हैं। इन कवियों में एक ओर रामनरेश त्रिपाठी, रूपनारायण पाण्डेय और मुकुटधर पाण्डेय शुद्ध रोमैण्टिक भावना के कवि आते हैं; और दूसरी ओर राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', रामचन्द्र शुक्ल और बदरीनाथ भट्ट जैसे कवि हैं, जिनमें यह भावना आंशिक रूप से अभिव्यवित ग्रहण करती है। रामनरेश त्रिपाठी जी ने मिलन, स्वप्न और पथिक जैसी रचनाओं में स्वाभाविक स्वच्छन्द भाव को अभिव्यवित दी है। इन खण्ड काव्यों में प्रकृति सौन्दर्य, मानव प्रेम और राष्ट्रीय भावना को सहज अभिव्यक्ति मिली है। इस सहजता की ही दृष्टि से कवि ने कल्पना से कथाओं की रचना की है। इन खण्ड-काव्यों में व्यापक प्रेम

अभिव्यक्त हुआ है, जिसमें प्रकृति, मानव और देश तीनों प्रेम में समाहित हो गये हैं। यदि नायक नायिका एक-दूसरे के प्रेम के प्रति समर्पण भाव रखते हैं, तो साथ ही इनके सामने देश-प्रेम और देश-सेवा का लक्ष्य भी रहा है।

रूपनारायण पाण्डेय की प्रारम्भिक रचनाएँ ब्रजभाषा में हैं, परन्तु बाद में उन्होंने खड़ी बोली को अपना लिया। उनकी काव्यभाषा सहज और भावव्यंजक है। उनकी कविताओं और गीतों में राष्ट्र, समाज और जाति आदि के नवनिर्माण की भावना व्यंजित है। उनमें इतिवृत्तात्मकता के स्थान पर प्रगीतात्मक भाव पाया जाता है। इसी प्रकार इनकी कविताओं में उपदेश के स्थान पर भावों का उद्बोधन है। 'वन-विहंगम' जैसी उनकी रचनाओं में भावशीलता और सहजता को लक्षित किया जा सकता है। इसमें मार्मिक भाव-व्यंजना है। साथ ही, इनकी कविताओं में जीवन के प्रति दुःखवाद और असारता की भावना भी पायी जाती है। उल्लेखनीय है कि यह दार्शनिक दृष्टि छायावाद में अधिक वैयक्तिक और मार्मिक ढंग से लक्षित हुई है। पाण्डेय जी ने प्रकृति के माध्यम से मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति रोमैण्टिक कवियों के समान की है।

मुकुटधर पाण्डेय श्रीधर पाठक के साथ आत्माभिव्यक्ति के कवि हैं। उन्होंने बाङ्ला और अंग्रेज़ी के काव्य का प्रभाव आत्मसात् किया था। इसी कारण उनके काव्य में कल्पना और आत्मानुभव को अभिव्यक्ति मिली है। उन्होंने सामान्य-से सामान्य विषयवस्तु के अनुभव को गहराई के साथ व्यक्त किया है। उन्होंने संसार की असारता को मानव जीवन में लक्षित किया है। मनुष्य को संघर्षों में अनेक अनुभवों के बीच गुज़रते देखा है। आगे चलकर जीवन की इस असारता का अनुभव भिन्न रूपों में छायावाद के प्रमुख कवियों में देखा जा सकता है। संसार की सार-हीनता से ही मनुष्य सृष्टि के रचयिता के ऐश्वर्य को पहचानता है। कवि इस सत्ता से परिचित होने के लिए उत्सुक हो उठता है। इसी स्तर पर पाण्डेय जी प्रकृति के व्यापक सौन्दर्य में उस सत्ता को पाना चाहते हैं। प्रकृति के सौन्दर्य में उसकी झाँकी कवि को मिलती है। इस प्रकार कवि रोमैण्टिक भाव धारा को अभिव्यक्ति देने में सफल हुआ है। श्रीधर पाठक से इन कवियों की भावात्मक निकटता को देखा जा सकता है।

रामचन्द्र शुक्ल की प्रतिष्ठा साहित्य चिन्तक और इतिहासकार के रूप में है। उनकी काव्य रचनाओं की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। परन्तु उनकी काव्य प्रवृत्तियों में ऐसे तत्त्व पाये जाते हैं, जो साहित्य में नई दृष्टि प्रतिफलित करते हैं। उनके काव्य में भारतीयता और राष्ट्रप्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। अतीत के भारत के गौरव पर उन्हें अभिमान है। वर्तमान परिस्थिति से वे दुःखी हैं। अपने देश के उत्थान-पतन की भावना से शुक्ल जी का मन उद्वेलित हुआ है। शुक्ल जी ने प्रकृति के वस्तुपरक सौन्दर्य का भी अंकन किया है। उनके अनुसार प्रकृति के

सौन्दर्य का आस्वादन सहज आनन्द की भावना से किया जा सकता है। उन्होंने प्रकृति के आलम्बन रूप में चित्रण पर बल दिया है, क्योंकि उनके अनुसार प्रकृति हमारे भावों का सहज आलम्बन है। इसी दृष्टि के आधार पर आर्नाल्ड के 'लाइट आफ़ एशिया' का अनुवाद उन्होंने 'बुद्ध चरित' के नाम से किया था। इसमें मानवीय आदर्शों के प्रति उनकी आस्था और प्रकृति सौन्दर्य के प्रति उनके आकर्षण को अभिव्यक्ति मिल सकी है। इस प्रकार जहाँ हम श्रीधर पाठक के भावात्मक पक्ष को अभिव्यक्त होता देख सकते हैं, वहाँ शुक्ल जी में वर्णनात्मकता की प्रवृत्ति रही है।

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' के काव्य का एक अंश ऐसा है, जो भारतेन्दु युग से चली आनेवाली स्वच्छन्द भावना को अभिव्यक्ति दे सका है। 'पूर्ण' जी ने खड़ी बोली में तत्कालीन युग की भावनाओं को अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने अपने समाज की विघटनशील और जर्जर स्थिति को मार्मिकता के साथ अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने श्रीधर पाठक के समान 'दिल्ली दरबार' और 'राज भक्ति' जैसी कविताओं में अंग्रेज़ी राज की सराहना भी की है। किन्तु साथ ही, उनमें देश के जागरण और उसकी स्वतंत्रता की कामना अनेक रूपों में अभिव्यक्ति ग्रहण करती है। इसी प्रकार प्रकृति के सरल और सहज सौन्दर्य के वर्णन में उनकी स्वच्छन्द भावना को देखा जा सकता है। इस प्रकार कुछ रूपों में पूर्ण जी में श्रीधर पाठक से समानता लक्षित की जा सकती है।

बदरीनाथ भट्ट इस युग के एक ऐसे अन्य कवि हैं, जिनमें रोमैण्टिक भाव के कतिपय रूप अभिव्यक्ति ग्रहण कर सके हैं। उनका मन विश्व की अव्यक्त सत्ता के प्रति जिज्ञासु भाव से आन्दोलित हुआ है। साथ ही संसार की क्षण-भंगुरता ने उनके मन को बार-बार खिन्न और उदास किया है। फिर वह अपनी व्यक्तिगत उन्नति की सीमा से आगे बढ़कर पूरे देश और समाज के विकास की कामना करते हैं। उनका देश-प्रेम और राष्ट्र-निर्माण की उनकी भावना उनके काव्य में अभिव्यक्ति ग्रहण करती है। इसी प्रकार भट्ट जी ने प्रकृति को मानव के समान सजीव अंकित किया है। इन सब दृष्टियों से भट्ट जी श्रीधर पाठक की काव्य दृष्टियों को एक स्तर पर आगे विकसित करनेवाले माने जा सकते हैं। यहाँ जिन कवियों की चर्चा की गयी है, वे श्रीधर पाठक के द्वारा विकसित की गयी काव्य की रोमैण्टिक भावधारा को ग्रहण कर आगे बढ़नेवालों में हैं। श्रीधर पाठक से प्रारंभ होनेवाली इस परम्परा को छायावादी कवियों ने नये और किंचित् भिन्न स्तर पर प्रौढ़ तथा मार्मिक रूप प्रदान किया है। अत: श्रीधर पाठक के महत्त्व को इस पूरे परिवेश में और परंपरा के साथ ही आँका जा सकता है।

भारतेन्दु युग के अवसान के उपरांत, द्विवेदी युग के उत्थान को उत्कर्ष प्रदान करने वाले स्वच्छन्दतावादी कवियों में कविवर श्रीधर पाठक (1859-1928) का स्थान निस्संदेह सर्वोपरि है। छायावादी काव्य की प्रौढ़ता और व्यंजना की क्षमता जिस रचनात्मक सामर्थ्य के साथ अभिव्यक्त और अभिनन्दित हुई, उसकी पृष्ठभूमि तैयार करने में श्रीधर पाठक की बहुत बड़ी भूमिका रही। हिन्दी साहित्य के नवजागरण-काल में गद्य एवं काव्य, दोनों में—जिस तरल-सघन मार्मिकता की क्षमता अपेक्षित थी, उसके विकास का आरम्भ कवि पाठक की रचनाओं में भावाभिव्यक्ति के स्तर पर हुआ। उनके काव्य में तत्कालीन परिस्थितियों के आलोक में नवीन युग-चेतना के साथ-साथ व्यंग्य-विद्रूप-विसंगति तथा विनोदपूर्ण हास्य का पुर्ण हास्य का पुट भी देखा जा सकता है। राष्ट्र और समाज के जीवन में मानवीय मूल्यों के ह्रास और विडम्बनाओं को समसामयिक परिदृश्य और राजनैतिक परिस्थितियों ने कितना प्रेरित-प्रभावित किया, श्रीधन पाठक की प्रतिक्रियाशील रचनाधर्मिता इसकी साक्षी है।

नवजागरण की इस घड़ी में हिन्दी-कवियों का मन और मानस जिस सामाजिक न्याय और लोक-प्रेम की दिशा में उन्मुख हुआ, उसका पौरोहित्य भी श्रीधर पाठक ने ही किया था। सरकारी नौकरी में रहते हुए भी राष्ट्रीयता की भावना को उन्होंने अनेक रूपों में अभिव्यक्त किया।

पाठक जी ने काव्य को रीतिकालीन रूढ़िबद्धता और अलंकारप्रियता से उन्मुक्त किया। उनके काव्य में प्रेम और प्रकृति के सौंदर्य की सहजता और मानवीय भाव-स्थितियाँ नयी शब्दावली में व्यंजित हुई हैं। 'मनोविनोद', 'कश्मीर-सुषमा' तथा 'भारत गीत' में उनकी भावशीलता सहज ही लक्षित की जा सकती है। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध कवि गोल्ड स्मिथ की काव्य-कृतियों का हिन्दी काव्यानुवाद भी उन्होंने प्रस्तुत किया था।

इस विनिबंध में हिन्दी के वरिष्ठ और सुपरिचित समीक्षक डॉ. रघुवंश ने कविवर श्रीधर पाठक की रचनाओं का सम्यक् मूल्यांकन करते हुए उनके ऐतिहासिक अवदानों का विवेचन प्रस्तुत किया है।

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

रेखांकन : रणजीत साहा